लोई का ताना

डा० रांगेय राघव

विनोद पुस्तक मन्दिर
हॉस्पिटल रोड, आगरा

भूमिका

प्रस्तुत ग्रंथ में कबीर की झाँकी है।

वैसे कबीर के जीवन सम्बन्धी तथ्य अधिक नहीं मिलते। मैं उनके साहित्य को पढ़ कर जिन निष्कर्षों पर पहुँचा हूँ उन्हीं को मैंने उनके जीवन का आधार बनाया है। कबीर पहले निम्नजातीय हिंदू बन कर रहना चाहते थे पर रामानन्द की दीक्षा के बाद वे जात पाँत की ओर से संदिग्ध हो गये। वे पहले अवतारवाद मानते थे। फिर वे निर्गुण की ओर झुके। फिर योगियों के रहस्यवाद और षट् चक्र साधना आदि की ओर। बाद में वे सहज साधना में चमत्कारवाद से आगे बढ़ गये। अन्त में तो वे एक नई भूमि पर पहुँच गये जिसका वर्णन यहाँ मैंने किया है। कबीर को लोगों ने ग़लत समझा है। कबीर में सूफ़ीमत, वेदांत, रहस्यवाद, नारीनिंदा, तथा अनेक बातें हैं जैसे संसार की असारता पर जोर, मायावाद आदि का वर्णन, पर यह अनेक विकास की मंजिलें हैं। वे धीरे धीरे आगे बढ़ गये हैं। वे कितने बढ़ गये थे यह समझना तब और भी अधिक आश्चर्य देता है जब हम सोचते हैं वे आज से सैकड़ों बरस पहले थे। कबीर के चेलों ने ब्राह्मणों की नकल की। कबीर के विद्रोह और सत्य को दबा दिया गया। कबीर इतिहास में एक उलझन बन गया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ब्राह्मणवादी आलोचक थे। उन्होंने कबीर को नीरस निर्गुणिया कह दिया। वे कह गये हैं कि कबीर ने कोई राह नहीं दिखाई। कबीर ज्ञान के रहस्य में डुबाता था। साधारण जनता कबीर को समझ नहीं सकी।

यह सब ब्राह्मणवादी दृष्टिकोण है अतः त्याज्य है। अवैज्ञानिक है।

कबीर निर्गुण के परे था। कबीर ने जो राह दिखाई वह मानवता के कल्याण की ओर ले जाने वाली थी। वह भारतीय संस्कृति के नाम पर भेद भाव वाले ब्राह्मणवाद को नहीं मानते थे। वे इस्लाम का विरोध करके भी उससे घृणा नहीं करते थे, और उसे मुक्ति का पथ भी नहीं समझते थे। कबीर ने जनता का दलित जीवन देखा था, तुलसीदास की भाँति नहीं, एक जुलाहे की भाँति। वे सगुण ईश्वर को मानकर ब्राह्मणवाद के नियमों में बंध नहीं सके। पर उनका रहस्य भी ऐसा न था, कि वे संसार को छोड़ देते। घर में पत्नी थी, पुत्र था। पर पत्नी और पुत्र के ही लिये डूबे रह कर दूसरों का गला काटना वे माया कहते थे। कबीर ने कहा कि इंसान को किसी रूढ़ि की जरूरत नहीं, वह ईश्वर के लिये झगड़े, यह व्यर्थ की बात है। ईश्वर रहस्य इसीलिये है कि मनुष्य अपनी सीमित बुद्धि से उसे जान नहीं सकता, जो जानकार बनते थे उनको उन्होंने झूठा कहा। कबीर ने ही कहा था कि प्यारे आस्मान की ओर ताकना छोड़ दे। मन की कल्पना और भरमना छोड़ दे।

यह क्या शून्यवादी के शब्द हैं?

कबीर ने दूसरों के बल पर खानेवाले साधुओं का घोर विरोध किया था। वे तो महनत का खाना चाहते थे। साधारण जनता ने कबीर को समझा था। उसी ने कबीर को मुल्ला, पंडित, जोगी, आदि के पुरोहित वर्ग और सत्ताधारियों से बचाया था। पर बाद में कबीर पंथियों ने कबीर को मिटा दिया। परवर्त्तीकाल में कबीर को चमत्कारों से ढंक दिया गया।

कबीर ने हिंदू मुसलमान दोनों को निताँत निम्नजाति के आदमी की आंख से देखा था। पर चेले पढ़े लिखे थे। उस समय मुसलमान शासकों की शक्ति भी बढ़ गई थी। सारी भारतीय जातीयों का संगठन हो रहा था। निम्नजातीय जनता के रूप में कबीर के अनुयायी भी दलित थे। शासन मुस्लिम था। अतः इस्लाम पर अत्याचारों के नाम चढ़ते थे। उस समय कबीर पंथ हिंदू मत ही बन गया था।

कबीर ने तो भारत के साँस्कृतिक जन जागरण की नींव डाली है। उसके युग के बंधन थे, और उनकी उस पर छाप है। वह धीरे धीरे विकास करके कितना आगे आ गया था!

भाषा में उसने क्रान्ति की। बिल्कुल जन भाषा बोली। तुलसी की भाँति वक्त बेवक्त संस्कृत की बैसाखियाँ नहीं लगाईं। तुलसी के देवता आखिर संस्कृत बोलते थे। कबीर ने जनता के उपमान लिए और जीवन के अच्छे आचरण पर—सामाजिक आचरण पर जोर दिया। जहां तुलसीदास सारे अनाचार की जड़ कलि को मानते थे, कबीरदास कलि का नाम भी नहीं लेते। वे तो मोह-लोभ-दंभ और धन को ही इस माया और अनाचार का मूल मानत हैं।

कबीर का मुख्य संदेश प्रेम का है।

अब प्रस्तुत पुस्तक के बारे में कुछ और बातें साफ करदूँ।

कबीर पढ़े लिखे न थे। कविता लिखते नहीं थे। वे तो फौरन सुनाने वालों में थे। लोग लिखा करें, उन्हें इससे बहस नहीं थी। वे तो कह देते थे। इसी से मैंने उनकी कविताएं उनके मुँह से परिस्थितियों के बीच में सुनवाई हैं।

दूसरी बात है कमाल के द्वारा कथा कहलवाना।

कमाल कबीर का पुत्र था। कमाल के बारे में प्रसिद्ध है—

बूड़ा बंस कबीर का,
जब उपजा पूत कमाल।

परन्तु यह विद्वानों द्वारा कबीर की पंक्ति नहीं मानी गई। कमाल के बारे में किंवदंती है कि कबीर के बाद जब उसने पिता के नाम पर पंथ चालू करने से इंकार कर दिया तो कबीर के चेलों ने उसे ऐसा नाम दे दिया। कबीर की पत्नी लोई थी। कबीर की कविताओं में उसका नाम है।

तथ्यों के अभाव में कबीर के जीवन का पूरा चित्र देने में कमाल ने सहायता दी है। पहले कमाल उपसंहार में अपनी परिस्थिति बताता है। तब कबीर मर चुका है और पंथ बन गया है। 'उपसंहार से पहले' में कबीर की मृत्यु के बाद गुरुओं की कविताओं को सुना कर आपस में लड़ने वाले चेलों का वर्णन है। फिर 'आरम्भ' तक कबीर के विशेष रूप हैं। मरजीवा वाला अध्याय कबीर की महानता, नया पथ और उसके चिंतन को स्पष्ट करने को है। अन्तिम अध्याय में कबीर के जीवन के मोड़ हैं।

कमाल ही बोलता है। मैं नहीं बोलता। अपने युग के बंधनों में रहकर जो कमाल कह सकता है वह कहता है, बाकी मैं भूमिका में कहे दे रहा हूँ। कबीर निस्संदेह तत्कालीन जीवन में क्रान्ति का बीज था। दुर्भाग्य से बाद में फिर वह वर्गसंघर्षों जातिसंघर्षों में दब गया तब वर्गसंघर्ष का मतलब वर्ण-संघर्ष ही था।

मेरी अगली जीवनी 'रत्ना की बात' में तुलसीदास का वर्णन होगा, तब कबीर और तुलसी का भेद स्पष्ट नहीं हो जायेगा वरन् भारतीय इतिहास के इस अध्याय पर नया विवेचन भी स्पष्ट ही होगा।

रांगेय राघव

उपसंहार

'मैं कमाल हूँ। मेरे बाप का नाम कबीर था और मां का नाम लोई था'

'तुम क्या करते हो ?'

'काशी में जुलाहे का काम करता हूं।'

'फिर यहां क्यों आये हो ? यह तो हरद्वार है !'

'जानता हूँ, लेकिन क्या करूँ ? भटकता फिरता हूँ।'

'क्यों ऐसी क्या मुसीबत आगई तुमको।'

'मैं तुम्हें कैसे बताऊँ ?'

'शादी हो गई ?'

'नहीं।'

'तो बताने को बाकी क्या रह गया ! घर में प्रबंध नहीं है तो अपने आप साधु बन जाओगे। लेकिन कबीर का नाम तो हम लोगों ने सुना है। वह तो आदमी साधू था न ?'

'हाँ संत थे, और कवि थे।'

'अच्छा ! कविता भी करता था ?'

'अरे क्या तुम काशी कभी नहीं गए ?'

'मैं तो और भी ऊपर हृषीकेष में रहता हूँ।'

'तुमने उनका नाम नहीं सुना ?'

'सुना तो सही। पर उधर तो हम पण्डों में उसकी तारीफ नहीं है। वह तो मठों और मंदिरों का शत्रु था। हमने तो यही सुना था कि आदमी बड़ा अक्खड़ और फक्कड़ था।'

कमाल हँसा।

पण्डा चौंका। पूछा : 'क्यों हँसते हो ?'

'मैं यही तो सोचता था।'

'क्या ?'

'तुम कहते हो वह गद्दीदारों का दुश्मन था। ठीक यही न ?'

'हाँ हाँ।'

'और जानते हो, काशी में उनके चेलों ने क्या किया है ?'

'नहीं।'

'उन्होंने कबीर के नाम पर ही पंथ चला दिया है, गद्दी लगा बैठे हैं।'

कमाल फिर हंसा, उसकी अवाज में व्यंग और विक्षोभ था। पण्डा कुछ ताज्जुब में आगया।

कमाल ने फिर कहा : 'जानते हो उन्होंने मुझसे क्या कहा ?'

'क्या कहा ?'

'कहने लगे कबीर का बेटा कमाल ही लायक आदमी है। वही कबीर साहब की जगह अब उनके मंत्र का प्रचार कर सकता है।'

'कैसा मंत्र ?' पण्डा ने पूछा, 'मंत्र का अधिकार तो ब्राह्मण को है!'

'तो तुम्हारी मंत्र परम्परा तुम्हें ही मुबारक हो पण्डित! मेरा बाप तो कभी इन चीजों से प्रभावित नहीं हुआ और फिर मैं कैसे होता!'

'क्यों नहीं, आखिर तो बाप का ही बेटा ठहरा!'

मैंने कहा—'नहीं बाबा! मुझे गद्दी नहीं चाहिये। मेरा बाप गद्दी धारियों के ही खिलाफ तो जन्म जिन्दगी लड़ता रहा।'

'अरे तुम जुलाहे हो! तुम्हारी बयणजीवी जातियाँ पंजाब से लेकर बंगाल तक धीरे धीरे मुसलमान हो गई हैं।'

'क्यों न हों ? पण्डित ! क्या कोई बुरा काम करते हैं जुलाहे ? तुम ने उन्हें नीचा समझा तो वे क्या करते ?'

'अरे तुम शाक्त, वाममार्गी, देवीपूजक ! ब्राह्मणों के पुराने विरोधी !! मुसलमान न होओगे तो क्या करोगे ?'

'मैं एक बात पूछलूँ पण्डित !'

'पूछो।'

'बताओ ! हिंदुओं में जो नीचे हैं, पर मुसलमान नहीं हुए, वे कहाँ रहे!'

'वे शूद्र हैं।'

'तो जो मुसलमान हो गये वे ?'

'वे धर्म नाश करके म्लेच्छों के, यवनों के दास बन गये, उन्होंने तो अपने यह लोक और वह लोक दोनों बिगाड़ लिये।'

कमाल ने कहा: 'यही मेरे पिता कहते थे। वे कहते थे कि भाइयो ! तुम नीचे माने जाते हो। हिंदू अपने देश के वासी हैं। बे तुम्हें नीच मानते हैं। मुसलमान शासक परदेशी हैं। अगर वे तुम्हें मुसलमान बनाते हैं और तुम मुसलमान बन कर अपने को आजाद समझने लगते हो, तो क्या उससे समस्या का हल हो जाता है ?'

'क्या मतलब ?'

'अरे यह तो साफ है। मान लो मैं जो जुलाहा हूँ हिंदुओं में नीच माना जाता हूँ। अगर मैं मुसलमान हो जाता हूँ तो हिंदु मुझे बात बात में दबा नहीं सकते, लेकिन फिर भी आदमी आदमी के बीच दरार बढ़ती चली जाती है।'

'कैसी दरार ? यह दरार आज की है ? सनातन काल से भगवान ने यह दरार बना रखी है रे जुलाहे।'

'भगवान ने कि आदमी ने ?'

'आदमी ! आदमी क्या होता है ? आदमी तो निमित्त है, जो होता है वह असल में उसी की इच्छा है।'

'लेकिन मेरे पिता कहते थे.......

'अरे तेरे पिता कहते थे !! उसने शूद्रों और जुलाहे कोलियों की भीड़ इकट्ठी करली, वर्ना जुलाहे का क्या कहना, क्या न कहना। छिः। क्या समय

आ गया है। प्रभु ! कैसा कलि का प्रकोप है ! अभी तक वे नाथ जोगी थे, उनकी मुसीबत थी, अब यह एक नयी परेशानी खड़ी हो गई। क्यों रे ! तेरा बाप सहज यानी था ?'

'नहीं।'

'तो ?'

'वह आदमी था।'

'यानी बाकी सब जानवर हैं ?''

'यह तो मैंने नहीं कहा।'

'तो फिर तेरा मतलब क्या था ?'

मैं तो सिर्फ यही समझा हूँ कि बाकी सब लोग जात पाँत, धर्म भेद और संप्रदायों में बँटे हुए हैं। किसी पुरानी विरासत से बँधे हुए हैं। मेरा बाप कहता था कि इन सब बंधनों से परे भी एक सत्य है।'

'वह क्या है ?'

'मनुष्यत्व !'

'तो तेरे बाप का अर्थ था कि यह पवित्र भारत भूमि, यह देव भाषा, यह भव्य मंदिर, यह प्राचीन मर्य्यादा, सबको छोड़कर मुसलमान बन जाया जाये ?'

'नहीं।'

'तो ?'

'उनका कहना था कि जिस तरह हिंदू अपने भेद भावों में फँसे हुए हैं, उसी तरह मुसलमान भी अपने दूसरे ढंग के घमंड में चूर हो रहे हैं। इन दोनों को असली मर्म नहीं मालूम।'

'वह तो सिर्फ़ तेरे बाप को मालुम था ! उसका मतलब यह कि मुसलमान आते हैं, आ जाने दो। ठीक ही तो है। जुलाहे का क्या जायेगा ! जुलाहा कभी राजा तो बनेगा नहीं। अरे जो कुलीन हैं, जो अधिकारी हैं, उनकी क्या परिस्थिति होगी ?'

कमाल मुस्कराया।

'क्यों हँसता है रे जुलाहे ?'

'पण्डित ! ठीक बात है। मेरा बाप यही कहता था।'

'क्या कहता था।'

'यही कि जिनकी जात नीच है उनके लिये यह ब्राह्मण और यह मुल्ला दोनों समान हैं। वे हिंदू समाज के जात पाँत के भेद को देख कर फूट डाल कर अपने फायदे के लिये लोगों को मुसलमान बना कर उसका इस्तैमाल करते हैं, और इस तरह संस्कृति और धर्म की रक्षा के नाम पर, नीचों को ऊपर उठाने के अहंकार के नाम पर, हिंसा पलती है, घृणा बढ़ती है। वह मनुष्य को फिर जातियों में बाँटती है और छुआछूत बढ़ती है।'

'अरे जा जा जुलाहे के निखट्टू पूत! तेरी ये मजाल कि हम ब्राह्मणों को तू सबक देने लगा? प्रभु! इस कलि में क्या क्या नहीं होगा?'

'महाराज! व्याकुल न हों, मैं स्वयं चला जाता हूं।'

'अरे अब तू जाकर भी क्या करेगा जुलाहे? तेरा बाप तो सत्यानास के बीज बो गया! क्यों रे? मैं पूछता हूँ काशी में क्या धरम नहीं रहा? इतने इतने दिग्गज विद्वान वहाँ रहते हैं। उन्होंने नहीं रोका उसे?'

'उसे किसने नहीं रोका ब्राह्मण देवता! उसे सुल्तान लोदी ने रोका, मुल्लाओं ने रोका, महंतो, मठाधीशों और पण्डितों ने रोका, उसे पेशेवर साधुओं और संन्यासियों ने रोका, उसे नाथ जोगियों ने घोल कर समाप्त कर देने की चेष्टा की, उसे सूफियों ने अपने संप्रदाय में मिलाकर मिटा देने की कोशिश की, लेकिन वह!! वह नहीं मिटा। न सुल्तान की तलवार उसे काट सकी, न मुल्लाओं के फतवे उसका सिर झुका सके। महंतों, मठाधीशों और पण्डितों की जीभ उसके सामने लड़खड़ा गई। उसने मुफ्तखोर साधुओं को बताया कि जिंदा रहते हो तो हाथ पैरों से कमा कर खाओ, उसने नाथ जोगियों से कहा कि नहीं स्त्री पाप नहीं है, वह घृणित नहीं हैं, उसने सूफियों के उस छद्मवेश को प्रकट कर दिया जिसकी आड़ में वे इस्लाम का प्रचार किया करते थे। वह मेरा बाप कबीर था।'

'अरे तेरा न था तो क्या मेरा था। तू तो ऐसा खुश होरहा है जैसे जैन अपने तीर्थङ्कर की याद कर के मगन हो जाते हैं।'

'यही तो मुझे साले डालता है।

'क्या भला?'

'कबीर के चेले, कबीर की हत्या कर रहे हैं ।'

'सो क्यों ?'

'वे कबीर को अवतार बनाने की ही कोशिश कर रहे हैं और झूँठे चमत्कारों को दर्ज कर करके वे कबीर को गिराने की कोशिश कर रहे हैं । वे बड़प्पन की एक ही कल्पना करते हैं । जो आज बड़े कहलाते हैं उनकी नकल कर के उन जैसा हो जाना ही उनकी दृष्टि में महानता है, जब कि ये बड़े कहलाने वाले, उनके बड़प्पन के ढंग, यह सब बहुत छोटे हैं•••सब बेकार हैं•••••••

'अरे चल चल••••सिर पर ही चढ़ा जाता है । दूर होजा मेरी आँखों के सामने से । हँसता है ? कमबख्त ! दूर होजा ।'

'हँसता हूँ तुम्हारा छोटापन देखकर पण्डित ! यह सब कुछ बदल जायेगा, सब कुछ बदल जायेगा । यह सब छोटे सत्य हैं । अविनाशी अव्यक्त पुरुष का सत्य इन सब से परे है । उसका तत्त्व समझना मनष्य के लिये कठिन है, क्योंकि वह अपनी ही रूढ़ियों में बंधा हुआ है । उसको ही माया, और अहंकार ने बाँध रखा है । मैं स्वयं चला जाता हूँ । जहाँ जहाँ भी मैं जाऊंगा यही कहता फिरूंगा ।मैं चला जाऊंगा, पर मेरा एक गीत सुनलो ब्राह्मण देवता ।'

'नहीं मुझे नहीं सुनना है कुछ !'

'अच्छा मैं जाता हूँ, गाता जाऊंगा, जो सुन सको वह यहीं बैठे बैठे सुन लेना ।'

कमाल बाहर आगया और गाने लगा—

सुनता नहीं धुन की खबर
अनहद्द बाजा बाजता ।
रस मंद मंदिर गाजता
बाहर सुने तो क्या हुआ ॥
गाँजा अफीमो पोस्त
भाँग औ' शराबें पीवता,
इक प्रेमरस चाखा नहीं
अमली हुआ तो क्या हुआ ॥

काासी गया औ' द्वारका
तीरथ सकल भरमत फिरै
गाँठी न खोली कपट की
तीरथ गया तो क्या हुआ ॥
पोथी किताबें बाँचता
औरों को नित समझावता
त्रिकुटी महल खोजै नहीं
बक बक मरा तो क्या हुआ ।
काजी किताबें खोजता
करता नसीहत और को
महरम*नहीं उस हाल से
काजी हुआ तो क्या हुआ ॥
सतरंज चौपड़ गंजिफा
इक नर्द×है बदरंग की
बाजी न लाई प्रेम की
खेला जुआ तो क्या हुआ ॥
जोगी दिगंबर से बड़ा
कपड़ा रंगे रंग लाल से
वाकिफ नहीं उस रंग से
कपड़ा रँगे से क्या हुआ ॥
मंदिर झरोखे रावटी
गुल चमन में रहते सदा
कहते कबीरा हैं सही
घट घट में साहब रम रहा ॥
सुनता नहीं धुन की खबर
अनहद बाज बाजता ॥

संगीत दूर होता चला गया ।

---

* परिचित × निराकार ।

उपसंहार से पहले

बलूचिस्तान हिंगलाज में देवी मंदिर के बाहर दो आदमी बातें कर रहे थे।

'तुम कहाँ जाओगे ?'

'मैं बड़ी ज्वालामुखी तक यात्रा करने जाऊंगा।'

'वह तो ईरान के भी पार है न ?

'हाँ कोहकाफ के पास है।'

'कोहकाफ ! वहां की तो परियाँ प्रसिद्ध हैं ?'

'मैं वाममार्गी नहीं हूँ। मुझे परियों से क्या काम ?"

'स्त्री से काम सदा ही पड़ना चाहिये,' पहले वाले ने कहा और कहते हुए मुस्कराया।

इसी समय घोड़े पर सवार एक आदमी आकर वहाँ उतरा। उसने मुँह पर साफे का छोर ऐसे बाँध रखा था कि ढाटा सा लगता था।

'अरे कौन है भाई ?'

'मुझे नहीं पहचाना ?' कह कर उसने ढाटा खोल दिया।

'अरे !' पहला वाला आदमी हर्ष से उठ खड़ा हुआ । 'जोगी कमलू ! तुम कब आये ?'

'आया हूँ यह तो देख ही रहे हो । पर तुम्हारी यह धूल बला की मुसीबत हो गई ।'

'आओ आओ ! काशी होके आया है तो आदमी ही न रहा ।' पहले वाले ने कहा ।

'उज्झकनाथ !' आगन्तुक ने बैठते हुए कहा—'तुम नहीं समझोगे । मैं जो देखकर आया हूँ वह तुम्हें आखिर सुनाऊँ तो कैसे ?'

'अरे सुनाते रहना, पहले गाँजा तो पियो । इधर तो मैंने ऐसी आदत डाल ली है कि हाथ भर ऊँची झल्ल उठा देता हूँ ।'

वह अपने उस्तरे से मुँडे सिर पर हाथ फेरकर मुस्कराया और उसने उठने की मुद्रा में देखा ।

जोगी कमलू ने गले में पड़ी मालाओं के गुरियों को उंगलियों से सुलझाया और ठोड़ी पर लटकती दाढ़ी को खुजाकर धीरे से कहा : 'मैं गाँजा नहीं पीता ।'

उज्झकनाथ चौंक उठा । कहा : 'क्यों ! क्या तू अब वैष्णव होगया ।'

'नहीं ।'

'तो ?'

'उज्झकनाथ! जिसे हम सब कुछ समझते हैं, वह तो कुछ भी नहीं है ।'

उज्झकनाथ नहीं समझा । कोहकाफ़ जाने वाले यात्री ने कहा : 'मेरा नाम हरनाथ है । मैं जात का हाड़ीमारंग हूँ । बंगाल का वासी हूँ । तुम क्या कहते हो ?

'तुम्हें यहाँ आये कितने दिन हुए ?' जोगी कमलू ने पूछा ।

'यहाँ तो मैं सात दिन पहले आया था । पर बंगाल छोड़े मुझे सात बरस हो गये ।'

'फिर काशी से कब आये ?'

'समझ लो चार पाँच बरस बीत गये । काशी से मथुरा गया था । वहाँ बादशाह सिकंदर लोदी की पचीस एक कोस पर लड़ाई होरही थी । बदलगढ़

के चँदवार ठाकुरों से घमासान हो रही थी। मैं फिर जालन्धर चला गया। पठानकोट होता हुआ यहाँ आ गया हूँ।'

'तभी तुम नहीं जानते।'

'क्यों, गोपीचन्द के मठ की तरफ इधर से मैं सिंध जा सकता हूँ न?'

'तुम तो कोहकाफ़ जा रहे थे?' उज्झकनाथ ने कहा।

'अरे तो घूम कर चला जाऊँगा।' हरनाथ ने कहा। 'तुम कहो, तुम काशी में क्या देख आये हो?'

जोगी कमलू कुछ देर चुप रहा। फिर कहा : 'सतगुरु कबीर साहेब का स्वर्गवास हो गया।'

'कौन? मैंने भी यह नाम सुना तो है। मुझे चित्तौड़ में कुछ जोगियों ने उसके बारे में बताया था।'

'उसके उसके क्या करते हो जी। तुम्हें इज्जत से बोलना नहीं आता।'

'हाँ, हाँ, अपनी बात तो यही है भाई। अभी कुछ दिनों पहले एक आई पंथी भैरों का चोला चढ़ाये हाथ में अग्यारी लिये मिला था, वह कहने लगा कि गुरु दत्तात्रेय और गुरु गोरखनाथ के बीच में आई महाराज का औतार हुआ। कहने लगा वह बड़ा पहुँचा हुआ था। तुम भी उसी की सी बातें करते हो?'

'नहीं, नहीं, मैं वह सब नहीं कहता। मैं तो सत् गुरु कबीर साहेब की बात कहता था।

'अलख निरंजन!' हरनाथ ने कहा—'आदेश! आदेश!'

उज्झकनाथ ने चिलम में गाँजा भरते हुए कहा : 'जय गुरु गोरखनाथ! अरे कमलू तूने बताया नहीं, कि कबीर साहेब के मरने की ऐसी कौन सी बात है आखिर? देख --

इक लाल पटा एक सेत पटा
इक तिलक जनेऊ लमक जटा

जब नहीं ऊलटी प्राण घटा
तब छोड़ जाइगे लटा पटा।

बोल ! सुना ?'

'वाह वाह !' हरनाथ ने कहा—'चरपट नाथ तो चर्पटनाथ ही थे। पर गुरु गोरखनाथ कह गये हैं—

आवै संगें जाइ अकेला
ताथैं गोरष राम रमेला।
काया हंस संग ह्वै आवा
जाता जोगी किनहूँ न पावा॥
जीवत जगमैं मूवां मसांणँ
प्रांण पुरिस कत कीया पयांण !
जांमण मरणां बहुरि बिओगी
ताथैं गोरष भैला जोगी॥

कमलू जोगी इस समय मग्न सा होकर उठा और नाच नाच कर गाने लगा—

सुगवा पिंजरवा छोरि भागा।
इस पिंजरे में दस दरवाजा।
दस दरवाजे किवरवा लागा।
अँखियन सेती नीर बहन लाग्यो॥
अब कस नाहिं तू बोलत अभागा।
कहत कबीर सुनो भई साधो।
उड़िगो हंस टूटि गयो तागा।
सुगवा पिंजरवा छोरि भागा॥

हरनाथ और उज्झकनाथ आश्चर्य से देखने लगे। हरनाथ ने कहा : 'जोगी !'

परन्तु कमलू मस्त था। उसने कहा : 'जोगी ! जानते हो ! सद्गुरु ने धरती को पाप से उबार लिया। वे बड़े पहुँचे हुए थे। उनका सा तो कोई हुआ ही नहीं।'

'क्या कहते हो !' हरनाथ ने काटा—'गुरु गोरखनाथ अमर हैं। वे सुनेंगे तो अवश्य दण्ड देंगे।'

'देंगे तो सद्गुरु इस दीन की रक्षा करेंगे।' कमलू ने कहा।

'तुम गुरुगोरख पर संदेह करते हो ?' उज्झकनाथ ने कहा—'अरे सुनो—

ॐ आदेस अलख अतीतं
तदा न होती धरती न आकासं।
तदा काले सिंभू भई हमारी उतपन्य।
माता न लेबी दस मास भारं
पिता न करिबा आचार विचारं
जोनी न आयबा, नाभि न कटाइबा
पुस्तग पोथी ब्रह्मा न बजायबा।
तहाँ अलेष पुर पटणि अनोपम
सिला तहाँ बैठे गोरषराई।
तुम दमड़ी चमड़ी का संग्रह करौ
गुर का सबद लै लै दोजिख भरौ॥
गुप्ती चक्र चलावौं हथियार
पंडित बुधि बहौत अहंकार।
ऊभा ते सिध बैठ तैं पाषांण
श्री गोरख वाचा परवांण।
अनन्त सिधां मैं रह रासि कही
गोदावरी कैं मलैं ऐसी भई॥"

'अहाहा,' हरनाथ ने चिमटा बजाते हुए दाद दी।

कमलू जोगी ने झूम कर गाया :

'धुंधमई का मेला नाहीं,
नहीं गुरु, नहिं चेला
सकल पसारा जेहि दिन मांही
जेहि दिन पुरुष अकेला।

गोरख हम तबके वैरागी
हमरी सुरति नाम से लागी ॥
ब्रह्मा नहिं जब टोपी दीन्हा,
बिस्नु नहिं जब टीका ।
सिव सक्ती के जन्मौ नांही
जबै जोग हम सीखा ।
सतजुग में हम पहिरि पाँविरी
त्रेता झोरी झंडा ।
द्वापर में हम अड़वँद पहिरा
कलउ फिरौं नव खण्डा ।
काशी में हम प्रकट भये हैं
रामानन्द चेताए ।
समरथ को परवाना लाए
हंस उबारन आए ।
सहजै सहजै मेला होइगा
जागी भक्ति उतंगा ।
कहैं कबीर सुनों हो गोरख
चलो सबद के संगा ।

हरनाथ खीझ उठा । उसने कहा : 'अरे जा जा ! बड़ा आया ब्रह्म का रूप बन कर । सुन—यो कथंत गोरष जती ।

वहाँ चलिबे का करौ विचार
अगम अगोचर सुलप आकार ।
घड़ा देवरा औघड देव
तहां जोगेस्वर लाग्या सेव ।
पँच मेला मिल पूरया नाद
धरणि गगन बिच भई अवाज ।
दीपक एक अषंडित बिन बाती

तहां जोगेस्वर थापनां थापी,
अगम अगोचर सकल, ब्रह्मण्ड,
ता दीपग कै चरण न प्यंड।
सिषा न नैन सीस नहिं हाथ
सौ दीपग देख्या जती गोरषनाथ।

कमलू जोगी ने दोनों कंधों को फड़काया और अब ताली बजा बजाकर झूमता हुआ गाने लगा—

झीनी झीनी बीनी चदरिया
काहे कै ताना काहे कै भरनी
कौन तार से बीनी चदरिया
इँगला पिंगला ताना भरनी
सुषमन तार से बीनी चदरिया
आठ कँवल दल चरखा डोले
पांच तत्त गुन तीनी चदरिया
सांई को सियत दस मास लागै
ठोक ठोक के बीनी चदरिया।
सो चादर सुर नर मुन ओढ़े
ओढ़ि के मैली कीनी चदरिया।
दास कबीर जतन से ओढ़ी
ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया॥
झीनी झीनी बीनी चदरिया।

तब वहाँ कमलू जोगी अकेला रह गया। उज्झकनाथ और हरनाथ चले गये थे। किन्तु कमलू का मन भर आया। उसे खेद था कि उन्होंने उसकी बात को सुनाही नहीं। यह तो एक प्रकार की जड़ता थी। यदि सामने ठहरने नहीं पाये तो उन्होंने सिर क्यों नहीं झुकाया!

सद्गुरु की मृत्यु की वेदना, और उपेक्षा ने उसे व्याकुल कर दिया। वह अपने को समझाने को गाने लगा—मानों वह अप्रत्यक्ष अहंकार को वायु में से भी हटा देना चाहता था—

रमैया की दुलहिन लूटा बजार।
सुरपुर लूट नागपुर लूटा
तीन लोक मचा हाहाकार।
ब्रह्मा लूटे महादेव लूटे
नारद मुनि के परी पिछार।
स्त्रिगी की मिगी करि डारी
पारासर कै उदर विदार।
कनफूँका चिदकासी लूटे,
लूटे जोगेसर करत दिचार।
हम तो बचिगे साहब दया से
सब्द डोर गहि उतरे पार।
कहत कबीर सुनो भाई साधो
इस ठगिनी से रहो हुसिआर !
रमैया की दुलहिन लूटा बजार !

गाते गाते कमलू अपने को भूल गया।

संध्या गहरी हो गई थी। घोड़ा हिनहिना उठा। कमलू उठ खड़ा हुआ और उसने घोड़े की पीठ पर हाथ फेर कर कहा—वह सचमुच गुरू था। वह सचमुच गुरू था।

और उसका गला रुँध गया। उसे कबीर साहेब के अन्तिम दर्शन याद आ रहे थे और फिर उसके होठों से हल्का सा शब्द निकला—सद्‌गुरु, सद्‌गुरु.......

रात और उतर आई।

सूर्य्यास्त हो गया

मैं कमाल ही हूँ। मैं उस दृश्य को भूल जाना चाहता हूँ परंतु भूल नहीं पाता। क्या करूँ?

पिता ने अपने सफेद केशों पर हाथ फेर कहा : 'बेटा कमाल!'

मैंने कहा : 'दादा तुम थक गये होगे। कब तक बुनते रहोगे? क्या तुम मुझ पर अपना भार एक दिन भी नहीं छोड़ सकते?'

झोंपड़े में निस्तब्धता थी। पिता ने करुणा भरी आँखों से देख कर कहा था : 'बेटा! जब तक आदमी जिये, उसे काम करना चाहिये। अपने पेट के लिये काम करना तो जरूरी है। हाथ पाँव काम करते रहते हैं तो चलते रहते हैं, उन्हें हराम के ने की आदत नहीं डालनी चाहिये।'

'थोड़ा आराम करलो दादा!' मैंने फिर कहा था। उन्होंने कहा : 'बेटा तू नहीं मानता तो यही सही।'

मैंने उन्हें खाट पर लिटा दिया था। उनका शरीर पतला दुबला था। मूंछें सफेद थीं। पाँच दिन की बढ़ी हुई सफेद बालों वाली दाढ़ी बड़ी अच्छी भी लग रही थी। वे तब सौ से ऊपर थे। मैं बुनता रहा। उस समय

उन्होंने कहा : कमाल।

'हाँ दादा।'

'बेटा तू डरता है ?'

'किससे ? दादा ?'

'मौत से ?'

मैं डर गया था। पूछा था : 'ऐसा क्यों कहते हो ! मैं तो डर रहा था, उसी दिन से डर रहा था जिस दिन तुमने भरी सभा में कहा था कि अगर काशी में मरने से स्वर्ग मिलता है, तो तुम्हें वह स्वर्ग नहीं चाहिये। तुमने कहा था कि मगहर ही में मरूँगा, भले ही मर कर गदहे का जन्म लेना पड़े।'

'तू इस सबमें विश्वास करता है बेटा,' उन्होंने लेटे लेटे कहा था 'बुद्धि से सोच कर देख। तू ही बता। काशी अगर महादेव की है, और महादेव सर्व व्यापी है, तो मगहर क्या महादेव का नहीं है ?'

'क्यों नहीं होगा ?'

'फिर एक स्थान में पुण्य क्यों, दूसरे में पाप क्यों !

'ठीक तो है दादा ! यह तो गलत है।'

'काशी के पण्डे लोग इस तरह प्रचार करके यहाँ आकर मरने वालों की संख्या बढ़ाते हैं और खूब धन कमाते हैं, इसके अतिरिक्त इसमें कोई सत्य नहीं है।'

'जाने दो दादा।' मैंने कहा था—और फिर काम में लग गया था। कुछ देर बाद पिता ने कहा था : 'कमाल बेटा !'

'हाँ दादा !'

'आज काम बन्द कर दे।'

'क्यों दादा !'

'बेटा अब मैं जा रहा हूँ।'

'कहाँ ?'

'वहाँ जहाँ सब ही एक दिन चले जाते हैं, और जाने के बाद फिर कभी लौट कर नहीं आते !'

क्या कहते हो दादा ! क्यों बुरी बात मुँह से निकालते हो। मेरा तो इस संसार में तुम्हारे सिवाय कोई नहीं है !'

'इस संसार में कोई सनातन होकर नहीं आता पुत्र ! सब आते हैं सब चले जाते हैं। नाग और गरुड़ दोनों का नाश हो जाता है। कपटी और सत्यवादी दोनों ही चले जाते हैं। गुण और निर्गुण की पहँचान करने वाले, पापी, और पुण्यात्मा कोई भी अमर नहीं होता। अग्नि पवन और पानी, यह सृष्टि, यहाँ तक कि विष्णुलोक भी प्रलय की छाया में विनष्ट हो जाता है। माया मत्स्यरूप धारण करती है, यह अहेर करता है, हरिहर ब्रह्मा भी जिससे नहीं उबर सके, उससे मनुष्य कैसे पार पा सकता है ! राम और लक्ष्मण चले गये। किंतु सीता को संग नहीं ले जा सके। कौरवों को जाते हुए देर नहीं लगी पुत्र। धारा नगरी को सुशोभित करने वाले भोज से भी नहीं रहा गया। पाण्डव चले गये, कुन्ती जैसी रानी चली गई, सुबुद्धि का भण्डार सहदेव भी चला गया। चलती बार कोई कुछ भी तो नहीं ले जा सका। मूर्ख मनुष्य ही बहुत कुछ संचय करता है। अपनी-अपनी कर के सब चले गये, किसी के हाथ कुछ नहीं लगा। रावण भी अपनी कर गया, और दशरथ का बेटा राम भी अपनी करके चला गया।'

मैं सुनता रहा। मुझे लगा इतिहास के विराट प्रकरण मेरी आँखों के सामने से जा रहे थे। मैंने देखा विकराल काल सब को खाये जा रहा था। क्यों सब कुछ नष्ट हो जाता है। फिर इस संसार में तत्त्व ही क्या है ?

मैंने कहा—'दादा ! सब कुछ नष्ट हो रहा है। फिर यह परिवार क्या है ? यह क्या बंधन नहीं है। तुम बता सकते हो मुझे तुम्हारे बिना कितना दुख होगा !'

'पिता ने कहा : 'बेटा ! सत्य यही है कि इस संसार में दो नियम हैं। जन्म और मृत्यु। मैं मृत्यु से डरता नहीं। किन्तु केवल इसलिये सोचता हूँ कि मनुष्य इस जीवन में असंख्य पाप और हिंसा करके अपने लिये सुख एकत्र करने में लगा रहता है। वह यह भूल जाता है कि मृत्यु अवश्यम्भावी है, वह निश्चय ही आती है। तू ही सोच। नाश का ज्ञान रखने वाला क्या कभी पाप करेगा ? वह तो जितने दिन रहेगा स्नेह और समता से ही इस संसार में

रहेगा। यह सब लोग अपने अपने निराधार जड़ विश्वासों में बँधे हुए हैं।'

मैं रो पड़ा। मैंने कहा : 'पिता क्या मनुष्य का हृदय कुछ नहीं है ? क्या उसे रोना नहीं आयेगा ?

पिता ने धीरे से कहा : 'पुत्र ! संसार में स्त्री के साथ रहना पाप नहीं है, वह तो सृष्टि का क्रम है। संतान को पालना माया नहीं है। किंतु जो संतान और नारी से अपना सम्बन्ध अटूट चाहता है वही भूला हुआ है। सृष्टि का क्रम है सब आता है, सब मिट जाता है। प्रकृति के नियम को देखकर दुख करना मनुष्य का अज्ञान ही होता है। यह अज्ञान ही मनुष्य को असह्य वेदना देता है।'

पिता चुप हो गये। मैंने उनके पाँव पकड़ लिये और कहा : 'यदि यह संसार व्यर्थ ही है तो इसके लिये इतने हाहाकार क्यों ?'

'हाहाकारों का मनुष्य ने निर्माण किया है पुत्र !' पिता ने सोचते हुए कहा, 'सृष्टि ने मृत्यु दी है, तो जन्म भी दिया है। एक से बढ़ाकर दूसरे को घटाना ठीक नहीं है। परन्तु मृत्यु जीवन के साथ अवश्य है और क्योंकि संसार के लोग अपने क्षुद्र व्यक्तिगत जीवन को अमर समझ बैठते हैं उनको चिल्लाकर याद दिलाना पड़ता है।

पिता ने कहा : 'पुत्र ! माता पिता जन्म देकर बालक को अपना कह कर स्वार्थ से पालते हैं। बाघिन रूप धारण करके उसे कामिनी खा लेना चाहती है। पुत्र कलत्र सियारों की तरह मुँह फाड़े खड़े रहते हैं। कौआ और गिद्ध दोनों उसकी मृत्यु चाहते हैं। स्यार और कुत्ता उसकी राह देखते हैं। धरती कहती है यह मुझे मिल जाये। पवन कहता है मैं उड़ा ले जाऊँगा। अग्नि कहती है मैं इस शरीर को जलाऊँगी। श्वान कहता है इसके जल जाने पर मैं इसका उद्धार करूँगा। जो केवल विषयों में भूले रहते हैं उनके लिये मैं यह बात कहता हूँ। मेरा मेरा कह कर स्वार्थ में भूले हुए लोग छटपटाते हैं। मनुष्य की पवित्रा सत्ता हरि स्मरण के लिये मिली है। हरि क्या है कमाल। वह सृष्टि का अज्ञात महान रहस्य, जो मूलतः आलोक है, प्रेम है, सहज है, उसकी अनुभूति यह मनुष्य ही तो प्राप्त कर सकता है।

मैंने देखा धीरे-धीरे धुंधलका छाने लगा था। पिता गुनगुनाने लगे—

भूला लोग कहै घर मेरा
जा घरवा में फूला डोलै
सो घर नाहीं तेरा,
हाथी घोड़ा बैल बहाना
संग्रह कियो घनेरा
बस्ती में से दियो खदेरा
जंगल कियो बसेरा ॥
गांठी बांधी खरच न पठयो
बहुरि कियो नहीं फेरा
बीबी बाहर हरम महल में
बीच मियां का डेरा
नौ मन सूत अरुझि नहिं सूझै
जनम जनम अरुझेरा,
कहत कबीर सुनो हो संतों
यह पद करो निबेरा।

मैंने सुना तो मेरी वेदना अपने आप स्थिर हो गई। वह उतरता अंधेरा। पिता के चरणों पर मेरे भय का अन्त हो गया। वह मेरा पिता था। जिसने मुझको पाला पोसा, वहीं तो मेरे जीवन का शाश्वत अभय था। उसके ही सहारे से मैं अपने को पूर्ण समझता था। किंतु पिता की इस वाणी ने बताया कि सृष्टि के क्रम में सबका ही नियंत्रण है। जिसको मनुष्य अपने सीमित सामान्य साधनों से काट नहीं सकता। और मुझे पिता के वे पहले शब्द याद आने लगे—इस संसार में जिसे देखा दुखी ही देखा। तन धारण करके किसी ने भी सुख नहीं पाया। मैं उदय अस्त की बात करता हूँ, तुम इसे विवेक से सुन कर विवेचन करो। इस पथ पर सब ही दुखिया हैं, गृहस्थ या वैरागी, जोगी, जंगम, सब ही को दुख है और तापस को तो दूना दुख है।

मैंने दुहराया—तापस को तो दूना दुख है। तपस्वी को ? दूना ??

झोंपड़े की नीरवता अब गहरी हो गई थी। पिता को जैसे अब मेरी याद नहीं थी। वे अपने गहरे सोच में पड़ गये थे।

मैंने उठ कर दीपक जला दिया। उसका हल्का प्रकाश झोंपड़े की भीतों पर कांपने लगा और वह मुझे उस समय अच्छा लगा। उसमें कितनी सांत्वना थी। वे खाट पर सीधे लेटे थे। उनका चौड़ा और दीप्त भाल दिखता था, और मैं सोच रहा था। यही है वह माथा जिसने हजारों आदमियों को हिला दिया था। यह गरीब पैदा हुआ था। आज भी गरीब था। जीवन भर मेहनत कर के इसने कमाई की और कितना शांत, कितनी पवित्र होकर लेटा हुआ है यह ! मैं सोचने लगा, हम सब आत्मा को मानते हैं। पिता भी समझते हैं कि वह एक विरानी वस्तु है जो पाँच तत्त्व के इस पिंजरे में आती है और अनदेखे ही चली जाती है और यह देह बिना पानी के ही डूब जाती है। राजा, रानी, अभिमानी चले जाते हैं। मुझे गीता की बात जो मैंने साधुओं की रम्मत में सुनी थी याद आने लगी—वह आत्मा न जन्म लेती है, न मरती है, वह अमर है। जैसे पुराने वस्त्र छोड़ कर मनुष्य नये वस्त्र धारण कर लेता है, वैसे ही एक चोला छोड़ कर वह दूसरे शरीर का चोला धारण कर लेती है। यहाँ जोग करने वाले जोगी और कथा सुनने वाले भोगी चले जाते हैं।

फिर पिता के शब्द आये। उन्होंने कहा था—यह तो पाप पुण्य की हाट लगी हुई है। धरम यहाँ दण्ड लेकर दरबानी करता है। केवल भक्ति रखने वाला ही अपनी मति को स्थिर रखने में समर्थ होने पर काल से पराजित नहीं होता।

यह सत्ता महासमुद्र में उठी हुई एक लहर के समान है जो उठती हैऔर फिर लय हो जाती है।

और अभी मैं सोच रहा था कि मुझे एक विभोर किंतु पराभूत सी चेतना की अनुभूति मिली।

मैंने सुना वे अत्यन्त गम्भीर और संयत स्वर से गा रहे थे। मुझे आश्चर्य हुआ।

परंतु मैंने देखा वे मुस्करा रहे थे और उनकी आँखें अब दीपक की रोशनी को देख रही थीं। उस वक्त मुझे लगा जैसे दीपशिखा स्थिर होगई थी। झोंपड़े में एक नयी आभा फैल रही थी। और शब्द मेरे कानों में पड़ने लगे—

कौन ठगवा नगरिया लूटल हो
चंदन काठ कै बनत खटोलना
तापर दुलहन सूतल हो।

मैंने अपनी चेतना में देखा और वह कल्पना मेरी सीमाओं को तोड़ने लगी। मुझे लगा मैं किसी इतने महान व्यक्ति के पास था कि मुझे आश्चर्य्य हुआ। और संसार ? संसार उनसे डरता था, घृणा करता था। लोग उन्हें दार्शनिक कहते थे। मैं देख रहा था कि वह आदमी, उस आदमी का हृदय, उस आदमी की चेतना, यह सब कितने अधिक कोमल थे !

वह मेरे पास भी थे, फिर भी मुझे लग रहा था कि जितना ही मैं हाथ पसारता हूँ, उतने ही वे मुझसे दूर हो जाते थे। उस क्षण मुझे लगा मैं वहाँ अपने लिये नहीं, उनके लिये हूँ। किसी का आलोक या महानता अपने आप में पूर्ण नहीं हैं। उनका बड़प्पन या अन्धकार मिटाने की शक्ति को दिखाने के लिये उनकी तुलना की एक वस्तु उनके सामने रहनी ही चाहिये। ऐसा ही मैं कमाल हूँ, जो भाग्य से कबीर जैसी महान् आत्मा के पास आगया हूँ। क्या है यह मेरी सत्ता, कुछ नहीं। बल्कि मुझे लगा कि इस अधमुंदे नयनों वाले महाकवि के लेटे हुए शरीर के सामने मैं जो चलते फिरते होने के कारण, यों अपने को नायक समझ रहा हूँ, वह मेरी भूल ही है। नायक तो लेटा है। मैं जो कुछ हूँ उसके कारण हूँ।

और तब आत्मा की अनुहार का लरजता स्वर मुझे सुनाई दिया :

उठो सखी मोर मांग सँवारो
दुलहा मोसे रूसल हो।

वह रूठना कितना मधुर था। मैं तन्मय हो गया। एक विशाल जीवन अपने अन्तिम क्षण में आत्म यातना को प्रेम की सरस अनुभूति में भिगोकर संसार को दिये जा रहा था। अनंत था वह जीवन का अभिनय, कितनी मादकता थी इसमें !

और पिता का स्वर सुनाई दिया—

आए जमराज पलँग चढ़ि बैठे
नैनन आंसू टूटल हो।

मैं चौंक उठा। यमराज !!

पिता ! वे जा रहे हैं !!

और मैं खड़ा-खड़ा भूल गया हूँ !

आखिर क्यों ?

क्या यह ममता से विरक्ति मुझे अपने पिता के द्वारा ही विरासत में नहीं मिली है ?

परन्तु क्या वह इतनी बड़ी है कि मुझे बांधे रह सके। ठीक है कोई शाश्वत नहीं होता। पिता भी तो सौ बरस से ऊपर हैं। क्या वे जिये ही जायेंगे !

नहीं।

तो क्या वे चले जायेंगे ?

यही मेरी समझ में नहीं आ रहा था। मैं वहाँ अपने पिता को नहीं देख रहा था, मुझे वहाँ अनेक शताब्दियों का ज्ञान दिखाई दे रहा था। मुझे युग ही साकाररूप में दिखा रहा था। मुझे लग रहा था वह मनुष्य की देह धारण करने वाला ही नहीं था, वहाँ मुझे मनुष्य की आत्मा के सच्चे दर्शन हो हो रहे थे।

और फिर स्वर उठा—

चारि जने मिलि खाट उठाइन
चहूँ दिसि धू धू ऊठल हो
कहत कबीर सुनो भइ साधो
जग से नाता छूटल हो।

वहीं मैं अपना संतुलन खो बैठा और खाट की पाटी पकड़कर रोने लगा। उस समय दीपक के प्रकाश में जब पिता ने मेरी ओर देखा तो मुझे लगा सचमुच वह टूटता हुआ नाता फिर जुड़ गया है, अब वह नहीं टूटेगा क्योंकि स्नेह के बंधन में खिंचने की शक्ति होती है।

पिता ने कुछ नहीं कहा। वे मेरे सिर पर हाथ फेरते रहे। मचते हुए हाहाकार शांत हो गये। सब कुछ केन्द्रीभूत हो गया, सब कुछ पास आगया! उस झोंपड़े में कबीर के स्पर्श से दीपक के प्रकाश में बैठा हुआ मैं अपने मोह

ममता और स्नेह की स्तर-स्तर जमी पर्तों को उघड़ते हुए देखता रहा ।

आधीरात हो गई थी ।

मैंने देखा वे शांत सो गये थे। मैंने खेस उढ़ा दी। वे किसी गहरे स्वप्न में उलझे हुए से दिखाई दे रहे थे । वह न जाने किस विराट यात्रा का अंत था या किसी नवीन महान यात्रा का उपक्रम था । मैं नहीं जानता । वे जब बात करते थे तो ऐसा लगता था, जैसे वे किसी गूढ़ रहस्य को समझते हैं, जैसे समझते तो नहीं, परन्तु उसकी उन्हें अनुभूति हो चुकी है और वे उसे समझाने की चेष्टा करते हैं तो शब्द निर्बल हो जाते हैं, वे जो कहना चाहते हैं, निस्संदेह वे उसे नहीं कह पाते । और मैं सोचने लगा, क्या वे फिर ऐसे ही किसी रूप के विषय में आज फिर सोच रहे थे ! अनाहत नाद !! वह नाद जो किसी प्रकार के संघर्ष से जन्म न ले ! पिता उसे बोलती देदीप्यमान शीतल ज्वाला का आलोक कहा करते थे········

मुझे लगा इस समय खाट पर वही आलोक मुस्करा रहा था···········

सुबह जब मैं उठा तो आवाज सुनकर ।

धीरा कहार था । उसने पुकारा : कमाल भैया । कमाल !

मैं बाहर आया ।

अरे बाहर आकर तो क्या देखता हूँ, कि देखता ही रह गया । मेरे पिता के पास कुछ युवक आया करते थे । वे उनकी कविताओं को लिख लिया करते थे । कभी कभी मैं भी लिख लेता था । पिता के पास सदा ही साधूसंतों की भीड़ रहा करती थी ।

मगहर में तो वह भीड़ बढ़ गई थी । बल्कि माँ के मरने के बाद से तो हम दोनों की कमाई साधू संतों की सेवा में ही उठ जाती थी । पिता आगे आगे चलते । संग भीड़ चलती । कभी पिता गाते, भीड़ दुहराती । परन्तु मैंने जो आज देखा वह तो बात ही और थी ।

सारा मगहर निस्तब्ध इकट्ठा हो गया था ।

उस भीड़ की उदासी में मेरे पिता की ऐसी महानता छिपी थी कि मैं सिहर उठा। मुझे याद आया, अंधेरी काली रात छा रही थी। आकाश में घमंड करती घटाएँ छा रही थीं। सनसनाती हवा शीतल सी बह रही थी। मैं उस दिन न जाने पिता के किसी गूढ़ पद का चिंतन कर रहा था। और अचानक वह ठंडी हवा मेरे शरीर में लगी तो मैं सिहर उठा था। उस सिहर में कितना अव्यक्त आनंद था! वह किसी अप्रत्यक्ष आनंद का झिलमिलाता सा आभास था जो आया था, जिसने सुप्त रोम रोम को जगाया था और फिर अंतरिक्ष तक सनसनाहट सी फैलाकर वायु की अंधेरी तरलता पर झूमकर मचलने लगा था। वैसे ही सिहरन भरी आनंद की अभिव्यक्ति मुझे हुई। मैं कवि नहीं हूँ, मैं दार्शनिक नहीं हूँ, मुझमें पिता की सी महानता की छाया भी नहीं, न मुझमें कभी उसकी सी आत्मविस्मृत सत्यान्वेषण की वह अटूट तन्मयता ही रही है, जो लघु को दीर्घतम बना देती है। पर उस भीड़ को मैं देखता रह गया।

वहाँ हिन्दू भी थे, मुसलमान भी थे और स्वर उठा : क्यों कमाल! तूने बताया तक नहीं? सद्गुरू का समय आ गया है........

मैंने दोनों हाथ उठाकर दयनीय स्वर से कहा : ऐसा नहीं कहो दयालुओ! ऐसा कठोर वचन मत कहो............

मेरे पसीजे हुए शब्दों ने उन्हें आर्त्त कर दिया। वह वेदना जैसे सबको छू गई थी।

मुझे अनुभव हुआ कि आदमी जब तृष्णा, ईर्ष्या, अहंकार और स्पर्धा से शीघ्र ही कुछ प्राप्त कर लेने के लिये काम करता है, तब वह अपने भीतर ही असहिष्णु हो जाता है और अपने कार्य्य की छोटी से छोटी असफलता भी उसे बहुत ही बड़ी सी दिखाई देती है। उसे अपनी ठीक बात में भी तब विश्वास नहीं रहता क्योंकि एक अहंकार का उद्वेग उसकी नीवों को ठोस भूमि पर खड़ा नहीं रहने देता। वह डरता है। यदि वह नास्तिक होता है तो उसे अँधेरा घेर लेता है। यदि वह आस्तिकता की डाँवाडोल विश्वास की किरण पकड़ कर झूमता है तब वह मृगतृष्णा में भटकने लगता है। मैं स्वयं नहीं जानता कि अभावग्रस्त मानव को किस प्रकार त्याग का अहंकार करके जीवन

बिताने की सचाई मिल सकती है। परंतु कबीर का जीवन यह अपूर्णता नहीं थी। चरमशांति थी वहाँ। निर्द्वन्द्वता आत्मसंतोष और आत्मयातना से नहीं आती। यह दोनों तो एक ही पहलू के क्रम से सामाजिक और व्यक्तिगत पक्ष हैं। वह तो तब मिलती है जब भीतर कोई रिक्त ही बाकी नहीं रह जाये।

पिता महान् है। वे पढ़े नहीं हैं, पर दुनिया उनसे पढ़ती है। मैं पढ़ा हूँ, लिखा हूँ क्योंकि उनके कारण, बचपन से ही कुछ पढ़े लिखे लोग घर पर आते रहे हैं, उन्होंने मदद की है, फिर भी मैं अनुभव करता हूँ कि जो वे जानते हैं वह मैं नहीं जानता।

मैंने कहा . वे सो रहे हैं। भाइयो वे सो रहे हैं।

पूर्णशांति छा गई मानों असख्य मेघों की गर्जना थम गई हो और सब चुप हो गये हों।

मगहर की छोटी सी बस्ती में आज काम धंधा बन्द था। सब बैठे थे। मुझे सबसे बड़ा आश्चर्य्य अब हुआ। मैंने हिन्दू और मुसलमानों की बातें सुनीं।

'कबीर साहेब हिन्दू थे।'

'हिंदू कैसे हुए ! वे तो हम जैसे मुसलमान थे !'

मुझसे सहा नहीं गया। आखिर तो जो जिस दायरे में रहता है, वह उस से बाहर की बात सोच भी तो नहीं सकता। हिंदू और मुसलमान दो अलग-अलग कुओं में पड़े हुए मेंढक थे। उनकी सारी परंपराएँ, उनके सारे फैलाव वहीं तक तो जाकर पहुँचते थे !! मुझे खेद हुआ, जीवन पर्य्यन्त मेरे बाप ने जो कहा उस पर अभी से चोट होना शुरू होगई थी। वे उन्हें भी बाँट लेना चाहते थे।

और इसका भी मूल क्या था ! श्रद्धा, आदर, और प्रेम। यही तो वे कबीर साहेब के लिये लेकर आये थे। उनकी राय में इससे और कुछ अच्छा वे कर भी तो नहीं सकते थे।

मैंने समझाना चाहा, पर सोचा जाकर पिता को जगा कर कहूँ, वे हँसेंगे और फिर कुछ कहेंगे तो सारी भीड़ शर्मिन्दा हो जायेगी। यही सोच कर मैं अंदर गया। पर जब मैं भीतर गया तब देखता ही रह गया।

साहेब तो सो गये थे। मैं उनका बेटा, उस समय मंत्रमुग्ध सा खड़ा रह गया। वे ऐसे थे कि उनकी शोभा मैं कभी भी नहीं कह सकूँगा। वह ऐसे दीप से दिखाई दे रहे थे, जैसे बिना ज्योति की उजियारी फैल गई थी। अक्षय पुरुष के पास हंस पहुँच गया था। वहाँ पद्मों की परछाइयों में माथे पर छत्र लगा हुआ था और मेरे पिता जैसे चंद्र, भानु और तारागणों के भीतर से निकलती ज्योति किरणों को देखकर चकित हो गये थे। आज हँस ने सुख पाया था! यही वह आदि वाणी थी, जिसका वेद भी अंत नहीं पा सका था।

सतगुर हंस का रूप धारण करके समस्त शोक छोड़ कर अपने लोक को चला गया था! भृङ्ग ने कीट को पलट कर भृङ्ग बना लिया था और अपना जैसा रंग देकर उसे संग उड़ा ले चला था। नासूत से परे मलकूत पहुँचने पर उसे विष्णु की ठाकुरी दीख पड़ी थी। इंद्र कुबेर बैठे थे, रंभा नाच रही थी, तेतीस कोटि देवता खड़े थे। हँस बैकुण्ठ को छोड़ कर आगे चला, शून्य में जगमग ज्योति जगने लगी। ज्योति प्रकाश में निज तत्त्व को देखकर वह हंस स्वयं ही निर्भय हो गया और उसके समस्त संशय और आतंक दूर हो गये।

नूर के महल और नूर की भूमि पीछे छूट गई। नवाँ मुकाम भी पार हो गया। आनंद से सब फंदों को छोड़ता वह हंस तो सत्यलोक पहुँच गया।

पुरुष ने जब हंस को दर्शन दिया तब जन्मजन्मांतर का ताप मिट गया, अखण्ड प्रेम जाग्रत हुआ था, अपना जैसा रूप बना लिया था, जैसे सोलह सूर्यों का आलोक भास्वर हो उठा।

अंडकटाह पार हो गये। भ्रम और कर्म की सीमाएं पीछे छूट गईं।

मैं अवाक् खड़ा रहा। शायद मैं अपने को भूल गया था। मैं केवल महात्मा के अंतिम दर्शन करता रहा।

उस समय मुझे सुन पड़ा, कोई गा रहा था—

सुरत सरोवर न्हाइ के मँगल गाइये
दरपन सब्द निहार तिलक सिर लाइये।
चल हंसा सतलोक बहुत सुख पाइये
परसि पुरुख के चरन बहुरि नहिं आइये।
अमृत भोजन तहाँ अमी अँचवाइये
मुख में सेत तँमूल सब्द लौ लाइये।
पुहुप अनूपम बास हँस घर चलि जिये
अमृत कपड़े ओढ़ि मुकुट सिर दीजिये।
वह घर बहुत अनंद हंसा सुख लीजिये
बदन मनोहर गात निरखि के जीतिये।
दुति बिन मसि बिन अंक सो पुस्तक बांचिये
बिन करताल बजाय चरन बिन नाचिये।
बिन दीपक उँजियार अगम घर देखिये
खुल गये सब्द किवाड़ पुरुख सों भेंटिये।
साहब सन्मुख होय भक्ति चित लाइये
मन मानिक सँग हंस दरस तहँ पाइये।
कह कबीर यह मंगल भाग न पाइये,
गुरु संगत लौ लाय हंस चल जाइये।

वही, वही तो है यह ! हंस। पहले यह सोहंग था, फिर पलट कर हंस हो गया। गगन गुफा में अजर रस झरने लगा था। बिना बाजे की झंकार उठ रही थी, केवल ध्यान की अटूट तल्लीनता थी। वहाँ ताल नहीं था पर जहाँ तहाँ कमल फूल रहे थे, उन पर हंस चढ़कर केलि कर रहा था। बिना चंदा के ही उजियारी फैली थी, और हंस दिखाई दे रहा था। युगों युगों की तृष्णा बुझ गई थी।

कौन गा रहा था मैं नहीं समझा। मुझे लग रहा था वहाँ मेरा पिता नहीं था, अविद्या की गांठों को खोल कर संचित ज्ञान पड़ा हुआ था।

मैं जब बाहर निकला तो आनंद से मन ओत प्रोत हो रहा था। मैं अपने आप विह्वल होकर नाच कर गाने लगा था—

दुलहिन गावहु मंगलचार
हम घर आये हो राजा राम भरतार,
तन रति कर मैं मन रति करिहौं
पाँचों तत्व बराती
राम देव मोंहि ब्याहन आए
मैं जोवन मदमाती।

लोगों ने आश्चर्य से देखा परन्तु मैं आगे बढ़ा और गा उठा—

सरिर सरोबर वेदी करिहौं
ब्रह्मा वेद उचारा
रामदेव संग भांवर लैहों
धन धन भाग हमारा,
सुर तैतीसों कौतुक आए
मुनिवर सहस अठासी,
कह कबीर मोंहि ब्याहि चले हैं
पुरुष एक अविनासी।

उस अविनाशी पुरुष से होते हुए तादात्म्य में मैंने अपनी अंतरात्मा में मृत्यु पर होती हुई विजय देखी, जो जीवन की शाश्वत मुक्ति बन कर जग रही थी। मुझे नहीं मालूम कि उस समय मुझे क्या हो गया था। वहाँ एक अतीन्द्रिय साधना-पुरुष के अन्त में से मुझे एक नया सृजन होता हुआ लगा। वह कितना निस्तब्ध था, किंतु कितना शान्तिदायक था, कि आज भी मैं उसको अपनी चेतना से खो नहीं सका हूँ। उस विरक्ति ने एक अटूट भक्ति का रूप धारण कर लिया था। वह भक्ति कितनी भी शून्य और रहस्यवादी क्यों न हो, क्या उसका आधार सामाजिक नहीं था? क्या वह सहज मानवीयता के परिवारिक स्वरूपों को लेकर जीवित नहीं हो उठी थी!!

'जय ! सद्‌गुरो की जय !!'

भीड़ निनाद करने लगी। उस कोलाहल को सुनकर मेरा हृदय टूट-टूक होने लगा।

अरे मेरा बाप भीतर खाट पर मरा पड़ा था और मुझे धिक्कार कि मैं रोया तक नहीं। मैं भागा। मैं फूट-फूट कर रोने लगा! वह मुझे छोड़ गया था। हाय मैं अकेला रह गया हूं। अब मेरा कोई सहारा नहीं है।

हठात् मैं चौंक उठा।

आलम कह रहा था : कौन होते हो तुम छूने वाले ? जन्म जिंदगी तुमने उसे नीच कहा। कबीर साहेब तुम्हारे नहीं हमारे थे। हम ही उन्हें बाइज़्जत दफ़न करेंगे।

और विक्रम कह रहा था : अरे जाओ जाओ ! तुम मुसलमानों ने इन्हें जिंदा मरवा देने की कोशिश की। वह हिन्दू थे। और हिंदुओं के ही कंधों पर चढ़कर वे आज जायेंगे।

मुझे लगा मेरा हृदय फट जायेगा। क्या सचमुच संसार इतना मूर्ख है, मैंने सोचा। झगड़ा और वही झगड़ा, सो भी किसके पीछे ? उसी कबीर के जो इन दोनों का मज़ाक उड़ाता था ? जो मानव था, केवल मानव था।

मुझे लगा कि इस अज्ञान के पीछे श्रद्धा करने के योग्य भी एक वस्तु थी। वह थी मेरे पिता की श्रद्धा जो इन दोनों के भीतर समान रूप से थी। वह महा कवि इन दोनों के क्षुद्र बंधनों से इतना ऊपर उठ गया था कि दोनों ही उसको अपना अपना स्वीकार करते हुए नहीं झिझकते थे। और मेरे सामने यह विराट भारत देश आया। एक ओर हम थे, नीच, जो नीच समझे जाते थे। मेरे पिता उन नीचों में पलने वाली महानता के प्रतीक थे, दूसरी तरफ़ इस्लाम था, जिसके नारों से सारा देश गूंज रहा था, तीसरी तरफ़ प्राचीन ऊँची जातियों के विशाल मंदिरों के घंटों की घनघनाहट थी, जो इस्लाम के सिपाहियों के घोड़ों के सुमों की आवाज को डुबाने के लिये

अपने आपको बहरा बनाकर बज रहे थे, गूंज रहे थे, और फिर हम थे, जो सवर्णों की धरती पर खून दे देकर विजयी घोड़ों के द्वारा उठाई हुई धूल को दबाये रखते थे, फिर भी अपने को नीच ही कहा जाते हुए सुनते थे। और मेरे पिता एक ऐसे नये स्वप्न की खोज में थे जहाँ हिंदू हिंदू नहीं था, जहाँ मुसलमान मुसलमान नहीं होगा, इन सबसे ऊपर मनुष्य था, एक नया आदमी, नया आदमी....

मुझे लगा दिशाएं पुकारने लगी थीं—कमाल ! पहला नया आदमी सो गया है, पहला नया आदमी सो गया है........

लेकिन मैं जाग रहा हूँ, मैंने कहा और तब जब कि दोनों झगड़ा करने वालों का अहंकार उद्दण्ड हो रहा था, मैंने कहा : यहाँ लड़ो नहीं। जानते हो तुमने मेरे पिता की चादर पर क्या चढ़ाया है ?

'फूल हैं।' उन्होंने कहा।

मैंने कहा 'फूल हैं ! बेजान समझे जाने वाले पेड़ जब धरती में से रस खींचकर अपने यौवन की सबसे सुन्दर भेंट देते हैं तब वे फूल बनते हैं। तुमने देवता पर चढ़ाने वाली वस्तु को मेरे पिता पर श्रद्धा से चढ़ाया है क्योंकि पिता अब मिट्टी हो गये हैं। तुम मिट्टी के पीछे लड़ना चाहते हो। उठा लो यह फूल, बाँट लो इन्हें, गाड़ दो, जलादो, इस दुनिया के पहले इन्सान को अपने छोटे धर्मों के दायरों में बाँधने के लिये काटो नहीं, वह तुम्हारे दफनाने और जलाने से बड़ा नहीं हो सकेगा, वह जिंदा था तब तुमने उसे क्यों नहीं बाँट लिया ! तब तुम लोग डरते थे। तुम्हारा सुल्तान कांपता था, तुम्हारे मुल्ला डरते थे, तुम्हारे पंडित और तुम्हारे विशाल मन्दिर जो अन्याय के प्रतीक बनकर खड़े थे, सब डरते थे। चले जाओ !! आदर और प्रेम के नाम पर, श्रद्धा के नाम पर, तुम उस आजाद आदमी को अन्त में गुलाम नहीं बना सकते। वह तुम सबसे ऊपर था। जो तुम्हारे दायरों को चुनौती देकर जीता रहा। तुम्हारे धर्मों के ऊपर अपने सत्य का झंडा फहराता रहा, उसे तुम अपने धर्मों में दफनाना या जलाना चाहते हो ! यह असंभव है, यह असंभव है........

और मैं पिता के पाँव पकड़ कर रोने चिल्लाने लगा : पिता ! देखते

हो ! यह लोग क्या कह रहे हैं ! यह लोग अभी तक अंधे हैं । कल तक तुम मशाल उठाये खड़े थे, तो इन सबका अन्धेरा तुम्हारी अंगड़ाइयाँ लेकर बढ़ती मशाल की लपटों को देखकर काँप रहा था और आज तुम सो गये हो, तो यह समझ रहे हैं कि मशाल धूल में गिर गई है, पर नहीं, ऐ हिन्दू मुसलमानों ! वह मशाल मेरे कबीर के रक्त के स्नेह से भींगी हुई है, वह एक गरीब की इज़्ज़त है, वह नीच जात का बड़प्पन है, वह एक अनपढ़ का ज्ञान है, वह दुतकारे हुए की अपराजित मानवीयता है, उसे तुम तो क्या इतिहास भी नहीं बुझा सकेगा, वह अमर है, वह अमर है······

पिता का बाना

वह एक और चित्र था—उसे मैं क्या कहूँ, इतिहास बोलने लगेगा······

लोई झोंपड़े में लेटी हुई थी। कबीर बाहर से आया था।

'लोई!'

'आ गये?' लोई ने उठ कर कहा—'कहाँ चले गये थे, सुबह से यह बेला होने आई। वहीं गये होगे?'

वह रूठी हुई थी।

'कहाँ?' कबीर ने मुस्करा कर पूछा।

'अरे उन्हीं कनफटों के पास।' लोई ने कहा—'क्या कहा था। मैं तो सोच भी नहीं पाती कि तुमने ऐसा कहा होगा?'

'क्या कहा था लोई?' कबीर ने कहा और रोटी हाथ में ले ली।

बताऊँ ?

'नारी की झाँई परत
अन्धा होत भुजंग,
कबिरा तिनकी कौन गति
जो नित नारी को संग !'

कबीर हंसा। लोई ने कहा : 'तुम भुजंग हो न ? क्यों ? नारी ऐसी बुरी होती है ? मैंने तुम्हारा कुछ नुकसान किया है ?'

कबीर ने कहा : 'अरी यही तो मैंने उन नारी से डरे हुओं से कहा था। नारी की छाया से साँप तक अंधा हो जाता है, यानी जो जहरीला होता है।'

'और आगे ? ठहरो चटनी पीसती हूँ। आज और कुछ रहा ही नहीं।' लोई ने सिल लोढ़े को संभाला और मिर्च पीसने लगी। 'बोलो। मैं तुम्हें नरक में भेजूंगी ? क्यों ?'

चटनी लेकर कबीर ने कहा—'तू समझती नहीं लोई।'

'क्यों ?'

'वे जो नारी को विषय की ही वस्तु समझते हैं, उनके लिये क्यों ऐसा नहीं कहा जाये ? अगर मैंने सब नारियों के लिये ऐसा कहा होता, तो तुझसी घरवाली के साथ घर रहता ? कहीं अकेला भटकता नहीं ?'

लोई मुस्कराई। मानों प्रसन्नता आई है, उसे वह छिपाना चाहती है। कहा : 'यही तो मैं भी सोचती थी। जिसने पतिबरता के इतने गुन गाये हों वह क्या कनफटों की सी बातें करेगा ?

लोई गाने लगी—

कबिरा सीप समुद्र की
रटै पियास पियास।
और बूँद को ना गहै
स्वाति बूँद की आस।
चढ़ी अखाड़े सुन्दरी
माँडा पिउ सों खेल।

दीपक जोया ज्ञान का
काम जरै ज्यों तेल ।

लोई ने अपने ताने को संभाला और कहा : क्यों कंत तुमने नारी के लिये तो इतनी अटक लगा दी, पर पुरुष पर बंधन न दिया ?

'लोई ?' कबीर ने पानी पीकर कहा—'पुरुष पतंगा है । वह सतगुरू के बिना कहाँ बचता है ! परनारी तो पैनी छुरी है, वह तो अङ्ग अङ्ग काट देती है ।'

'तुम मुझे देखकर कहते हो । वैसे तुम भी हो पुरुष ही । तुम लोगों के मन में एक अहंकार रहता ही है, तभी तो स्त्री को तुम नीचा समझते हो ? तुम भी कनफटों में रहते, जो मैं न होती ।'

'क्यों, तू न होती तो मैं कहीं वाम मार्गियों में जा मिलता तो ?'

वह हँसा । और कहा : 'इन दो अन्तियों के बीच में ही सहज जीवन है लोई ।'

कबीर खाता रहा, लोई देखती रही । लोई कहने लगी, 'कमाल की मुझे चिन्ता रहती है । तुम दिन भर अपनी धुन में लगे रहते हो और तरह-तरह के आने जाने वाले साधुओं के साथ वह बैठा रहता है ।'

कबीर ने कहा : 'वह कोई ऐसी बात नहीं है । मनुष्य अपने विचार अपने आप बनाता है, लोई । वन जाने से कोई लाभ नहीं होता । योग और भोग तो घर में भी हो सकते हैं । वन जाने पर भी अगर रोना-कल्पना बना रहा तो उससे लाभ ही क्या ? कुल बोरनी अगर गंगा नहा भी आये तो उससे फ़ायदा क्या ?'

अभी वह अपनी बात पूरी कर भी नहीं पाया था कि द्वार पर कुछ कोलाहल सा सुनाई दिया । लोई चौंक उठी । कबीर बाहर निकल गया । लोई भी पथ पर आ गई । देखा, नाथ जोगियों का एक हुजूम आया था और प्रजा के लोग उनको प्रणाम कर रहे थे । कबीर क्षण भर देखता रहा और फिर उसने कहा, 'साधुओ, प्रणाम ! कहाँ से आना हुआ ?'

जोगियों का नेता सिर पर घनी जटायें लिये, भौंह ताने खड़ा था । उसने

कबीर की ओर ऐसे देखा जैसे वह किसी अत्यन्त दीन वस्तु की ओर देख रहा था।

जुलाहा रामा आगे आया। उसने कहा, 'अरे कबीर, ये लोग बड़ी दूर से आये हैं। देस-देस घूमते हुए, लोगों को उबारते हुए।'

कबीर मुस्कराया।

उसने योगी की ओर देखा और कहा।

अवधू भजन भेद है न्यारा।
क्या गाये, क्या लिखि बतलाये, क्या भरमे संसारा।
क्या संध्या तरपन के कींने जो नहिं तत्त बिचारा॥
मूँड़ मुँड़ाये जटा रखाये क्या तन लाये छारा।
क्या पूजा पाहन की कीने क्या फल किये अहारा॥
बिन परचै साहब होइ बैठे करैं विषय व्यौपारा।
ज्ञान ध्यान का करम न जाने बाद करैं हंकारा॥
अगम अथाह महा अति गहरा बीजन खेत निवारा।
महा सोध्यान मगन है बैठे काट करम की छारा॥
जिनके सदा अहार अंतर में केवल तत्त बिचारा।
कहत कबीर सुनो हो गोरख, तरैं सहित परिवारा॥

योगी उद्भ्रान्त हो गये।

रामा चिल्लाया, 'कबीर तू जोगियों की बेइज्जती कर रहा है। अरे सुन्न में समाध लगाने वाले संसार छोड़कर घर से निकले हैं। तू मामूली गिरस्त होकर इनसे टक्कर ले रहा है!'

लोई ने कहा: 'क्यों नहीं, जिस माँ ने जनम दिया है उस माँ के लिये जोगियों ने यही तो किया कि उसे घर में छोड़ कर चले आये।'

योगी आगे बढ़ा। उसने कहा, 'तू माया है, तू काम है, तू संसार में शृङ्खला है। जब नागिन लपलपाती हुई उलट कर आकाश की ओर चढ़ती है तब तू ही महाकुण्ड में अग्नि जला कर उसको सोख लेने के लिये लपलपाने लगती है।'

योगी के उस रौद्र रूप को देखकर उपस्थित लोग आतङ्कित हो उठे। लोई सहम गयी।

योगी ने अपना रंग जमते हुए देखकर फिर चिल्लाकर कहा :

'ओ गृहस्थो, काल के रूप में माया तुम लोगों को ग्रसे हुए है। तुम अव्यक्त पुरुष की ज्योति को नहीं समझ सकते। जब पक्षी आकाश की ओर नहीं, धरती के गर्भ में उतरने लगते हैं, तब वृक्षों के पत्ते नहीं निकलते, बल्कि आग के अंकुर फूटने लगते हैं, तब जानते हो, क्या होता है। गाय बाघ को खाने लगती है।'

उस समय योगी के मुख पर विजय का आभास दिखाई दिया। वह स्वर उठा कर चिल्लाया, और उसका त्रिशूल ऊपर उठ गया। उसने कहा, 'अलख निरंजन।'

सारे योगियों ने दुहराया, 'आदेश! आदेश!'

पथ पर खड़ी हुई स्त्रियाँ काँपने लगीं। रामा ने बढ़कर योगी के पैरों पर सिर रख दिया। कुछ बूढ़ी स्त्रियों ने इशारे किये। मलूकचन्द की स्त्री छिंगा गोरी थी, और सुन्दरी थी। यौवन की झनझनाती हुई प्रत्यञ्चा में बँध कर उसका लावण्य धनुष के समान झुकने के बहाने तन गया। उसे अपने ऊपर गर्व था। जिस समय वह भिक्षा देने के लिये बाहर आई तो योगी ने उसकी ओर मुड़कर भी नहीं देखा। वह चली गई। रामा ने कहा, 'देखा कबीर, महाराज ने अपना काम भी नष्ट कर दिया है।'

कबीर आगे बढ़ा।

उसने कहा, 'रामा, मैं एक गीत और सुनाना चाहता हूँ।'

गीत का नाम सुनकर रामा तो चौंक उठा, किन्तु लोई ने कहा 'सुना कन्त। डर किसका है?' मानो उसे विश्वास था कि जो उसका पति कहेगा वह अवश्य ही एक नया सत्य होगा।

भीड़ और पास आ गई।

कबीर गाने लगा।

मन ना रँगाये, रँगाये जोगी कपरा।
आसन मारि मँदिर में बैठे

नाम छाँड़ि पूजन लागे पथरा।
कनवा फड़ाये जोगी जठवा बड़ौले
दाढ़ि बढ़ाय जोगी ह्वै गैलें बकरा॥

योगी चिल्लाये, 'बन्द करो, वरना हम तुम्हारी बस्ती को भस्म कर देंगे।'

उनके त्रिशूल तन गये थे। हवा में उत्तेजना फैल गई थी, किन्तु उस समय लोई ने चिल्लाकर कहा, 'जोगी, किसे डराते हो? इतना भी सुनने का धीरज नहीं तो सांई से बिना दया के मिलोगे भी कैसे?'

भीड़ पुकार उठी, 'वाह कबीरा गाये जा!'

और कबीर जो अभी तक हँसता हुआ खड़ा था उसने फिर हाथ उठा कर गाया,

जङ्गल जाय जोगी धुनिया रमोले
काम जराय जोगी है गैलैं हिजरा।
मथवा मुंड़ाय जोगी कपड़ा रँगैले
गीता बांचि कै होई गैलें लबरा।
कहत कबीर, सुनो भई साधो
जमदरवजवाँ बांधरि जल पकरा।

भीड़ ने ठहका लगाया। रामा भाग गया। छिंगा लज्जा छोड़कर खिल-खिला कर हँसी। योगी क्रोध से त्रिशूल तान कर आगे बढ़ा, किंतु उसी समय छिंगा कबीर के सामने आ गई और देखते ही देखते अनेक स्त्रियों ने कबीर की रक्षा के लिये उसे घेर लिया। योगी चक्कर में पड़ गये। एक बुढ़िया जुलाहिन चिल्लाने लगी :

'अरे किसकी मजाल है जो बस्ती में खून खच्चर करे। एक तो हम खिलाएँ और ऊपर से इनकी गाली खायँ? मरे चले आते हैं यहाँ लड़कों को बहकाने। घर को आग लगा आये तो पेट को क्यों नहीं लगा लेते?'

भीड़ ने फिर ठहाका लगाया।

जब कबीर भीड़ में से निकल कर आया तो उसने देखा कि जोगियों का पता भी न था और रामा कान पकड़े कह रहा था :

'जान बची लाखों पाये। अब नहीं जाऊँगा, न किसी को बुलाऊँगा।'

कबीर ने कहा, 'रामा, शृङ्गी चमकाने से क्या होता है? सारे बदन पर भभूत मल लेने से क्या मन का मैल जल जाता है? अगर नंगे रहने से ही योग हो जाता तो काशी के सारे ढोरों को योगी क्यों नहीं कहा जाता?'

भीड़ छँट गयी। छिंगा एकटक कबीर को ओर देख रही थी। लोई ने इसे देख लिया। कबीर ने छिंगा के नयनों को क्षणभर देखा और धीरे से कहा।

'कबिरा माता नाम का मद मतवाला नाहिं,
नाम पियाला जो पिये सो मतवाला नाहिं;
घायल ऊपर घाव है टोटे त्यागी सोय,
भर जीवन में सीलवँत बिरला होय सो होय;

छिंगा ने सुना, झुककर कबीर के पाँव छुए और लौटकर अपने घर की ओर चलने लगी।

कबीर ने कहा,

प्रीत बड़ी है तुज्झ से बहु गुनियाला कंत,
जो हँस बोलौं और से नील रंगावों दंत।
नैनों अँतर आव तू नैन झांप तोहिं लैंव,
ना मैं देखौं और को ना मैं देखन दैंव।

छिंगा चली गयी।

लोई ने कबीर का हाथ पकड़ लिया और कहा: 'कंत आज जान बच गयी? जोगी चले ही गये, नहीं तो खूनखच्चर हो जाता। ऐसी क्या जरूरत थी कि इतना साफ-साफ कह दिया? सच, मैं तो डर गयी थी।'

कबीर ने निर्भय दृष्टि से लोई की ओर देखा और बड़बड़ाया,

गगन दमामा बाजिया पड़त निसाने घाव।
खेत पुकारै सूरमा अब लड़ने का दाँव।
तीरतुपक से जो लड़ै सो तो सूर न होय,
माया तजि भकती करै सूर कहावै सोय।
सिर राखे सिर जात है सिर काटै सिर होय,
जैसे बाती दीप की कटि उजियारा होय।

लोई ने देखा और मुस्करायी। वह मुस्कान एक अक्षय विश्वास था मानो प्राणों के कारागृह के द्वार खुल गये थे—और जिस आलोक को आजतक वह पत्थरों और लोहे से जड़े हुए वातायानों से देखा करती थी वह आज उस द्वार में से भीतर प्रवेश कर रहा था।

झोंपड़ा अपने दारिद्रय को लिये खड़ा था। चारों ओर जुलाहों की बस्ती में आज की घटना पर तरह-तरह की बातें हो रही थीं। रामा जनमत के कारण चुप था किन्तु उसके मन में अभी तक संदेह और आतङ्क असंतोष की बैसाखियों पर लँगड़ी रूढ़ियों को खड़ा करने का प्रयत्न कर रहे थे। छिंगा छप्पर के नीचे बैठी आज सोच रही थी कि वह कितनी महान छाया के सामने से निकल गयी थी। यह भाव भी उसके सामने स्पष्ट नहीं था। उसे ऐसा लग रहा था जैसे बहुत दूर, बहुत ऊँचे पहाड़ के ऊपर कोई देवता का मन्दिर था जहाँ वह जारही थी, गयी थी किंतु पहुँचने पर भी उसे लगा था कि देवता अब भी उतनी ही ऊँचाई पर था जितना वह धरती पर से सिर उठाकर देखती थी।

लोई ने पीढ़ा बिछा दिया था। कबीर सूत की पौनी सुलझाता हुआ बैठा था! लोई ने घड़े उठा लिये और पानी भरने चली गयी। कमाल भीतर आया।

'दादा', उसने कहा, 'तुम कहाँ चले गये थे?'

कबीर ने मुस्करा कर कहा, 'बेटा, तुझे ढूँढ़ने गया था।'

अबोध बालक समझ नहीं सका। उसने कहा, 'दादा, झगड़ा क्या हो रहा था?'

कबीर ने उत्तर दिया, 'बेटा, आज बस्ती में अंधों के बीच में एक हाथी आगया था।'

'फिर?' कमाल ने पूछा।

'फिर!!' कबीर ने कहा—

'ज्यों अँधरे कौ हाथिया सब काहू कौ ज्ञान,
अपनी अपनी कहत हैं काको करिये ध्यान।

कमाल ने देखा और आँखें फाड़कर देखता रह गया।

नाथ जोगियों की बात काशी में फैल गई ।

और कुछ ही दिन में सारी काशी बौखला उठी ।

मुल्ला लोग कहने लगे । पंडित लोग कहने लगे । कहने को क्या नहीं कहा ।

एक मुल्ला नमाज़ पढ़ कर निकला । उसने कुछ नीच जात के लोगों को कलमा पढ़ाया था । कबीर राह पर जा रहा था ।

देखा तो गाने लगा—

अल्लह राम जीव तेरी नाईं,
जन पर मेहर करहु तुम साईं ।
क्या मूँड़ो भीमहिं सिर नाये क्या जल देह नहाए
खून करैं मसकीन कहावै गुन को रहे छिपाए ।
क्या भो उज्जू मज्जन कीने क्या मसजिद सिर नाए ।
हृदये कपट नेजाव गुजारैं का जो सक्का जाए ।
हिंदू एकादशि चौबिसि रोजा मुसलिम तीस बनाए ।
वारह मास कहो क्यों टारो ये केहिमाहँ समाए ।
पूरब दिसि में हरि को बासा पच्छिम अलह मुकामा
दिल में खोज दिले में देखो यहै करीमा रामा ।
जो खोदाय मस्जिद में बसतु हैं और मुलुक केहिकेरा,
तीरथ मूरत राम निवासी दुइ महँ कितहूँ न हेरा ।
बेद किताब कीन किन भूठा भूठा जो न बिचारै
सब घटि माहिं एक करि लेखैं भै दूजा करि मारै
जेते औरत मर्द उपाने * सो सब रूप तुम्हारा
कबीर पोंगडा+ अलह राम का सो गुरूपीर हमारा ।

---

* उपाने=उत्पन्न + पोंगडा=बालक

भीड़ ने जयजयकार किया। नीच जातों में हल्ले हो गये। औरतों ने कबीर पर फूल बरसाये। बच्चे उनके नाम का जयजयकार करने लगे।

नाथ जोगी सामने नहीं आते थे। वह उनकी असांसारिकता को देखकर मज़ाक उड़ाता था। उनके जादू टोने फीके पड़ने लगे। भीख पर पलते साधुओं के विरुद्ध उसने जो पुकारा तो काशी के बच्चे दुहराने लगे—

सती न पीसै पीसना
जो पीसै सो राँड़
साधू भीख न मांगई
जो मांगै सो भांड़!

वह गरीब था। जुलाहा था। मेहनत करता। खाता। परिवार पालता। पोथी वालों को देख कर लड़के चिढ़ाते—

मेरा तेरा मनुआं कैसे एक होइ रे,
मैं कहता हूँ आंखिन देखी,
तू कहता कागद की लेखी,
मैं कहता सुरझावन हारी,
तू राख्यौ अरुझाई रे!
मैं कहता तू जागत रहियो
तू रहता है सोइ रे।
मैं कहता निर्मोही रहियो
तू जाता है मोरि रे।
जुगन जुगन समझावत हारा
कहा न मानत कोई रे।
तू तौ रंडी फिरै बिहंडी
सब धन डारे खोइ रे।

उसने एक अत्यन्त धनी सेठ के द्वार पर लगी भूखों की भीड़ देख कर एक दिन गाया—

नाम सुमिर, पछतायगा।
पापी जियरा लोभ करत है

आज काल उठि जायेगा।
लालच लागी जनम गँवाया
माया भरम भुलायेगा।

वेश्याओं के कोठों की ओर जाते सुन्दर युवक तरुणों को देखकर उसने सुनाया :

भजु मन जीवन नाम सबेरा,
सून्दर देह देख निज भूलो
झपट लेत जस बाल बटेरा
यह देही को गरब न कीजें
उड़ पंछी जस लेत बसेरा।

बजार में घबड़ाहट फैल गई। रईसों के बेटे लोकलाज से छिप छिप कर भागने लगे।

भरे मन्दिर में उसने गुंसाई जी पर चोट की--

ऐसी दुनिया भई दिवानी
भक्ति भाव नहिं बूझै जी
कोइ आवे तो बेटा मागें
यही गुसाईं दीजे जी
कोई आवै दुख का मारा
हम पर किरपा कीजे जी
कोई आवे तो दौलत माँगै
भेंट रुपया लीजैं जी,
कोई करावै ब्याह सगाई
सुनत गुसाईं रीझै जी,
सांचे का कोई गाहक नहीं,
झूँठे जगत पतीजे जी
कहैं कबीर सुनो भाई साधो
अंधों का क्या कीजे जी।

नीच जातियों में तो खलबली मच गई थी। वे कबीर को घेरे रहते।

घर पर लोई देखती। कबीर अलमस्त फक्कड़ बैठा रहता। गुँसाई जी का नौकर फटकारने आया। बोला—ऐ जुलाहे। जानता है किससे टक्कर ले रहा है?

गुँसाई ने नाथ जोगियों को खबर भेज दी थी। वे भी कबीर की हत्या करना चाहते थे। कबीर ने भीड़ में ही कहा: टक्कर!!

खुल खेलो संसार में बांधि न सक्के कोय।

जा जाकर कहदे—कबीर ने कहा है—

जाको राखे साँइया मारि न सक्कै कोय

नौकर के पीछे और नौकर आगये थे। पर कबीर ने तान छेड़ दी—

डर लागे हांसी आवै
अजब जमाना आया रे!
धन धौलत ले माल खजाना
वेश्या नाच नचाया रे।
मूठ्ठी अन्न साध कोहू माँगै
कहैं नाज नहिं आया रे
कथा होय तहँ स्रोता सोवैं
वक्ता मूँड़ पचाया रे।
होय जहां कहिं स्वांग तमासा
तनिक न नींद सताया रे,
भंग तमाखू* सुलफा गाँजा
सूखा खूब उड़ाया रे।

और जब यह संवाद गुँसाईं जी के पास पहुँचा वे क्रुद्ध हो उठे। बोले वह ईश्वर को तो मानता है न!

ऋषि ने कहा: 'मानता है महाराज,पर वह वेदों को नहीं मानता। कहता है व्यर्थ है। महाराज! वह तो कहता है संस्कृत कुंए का बंधा हुआ पानी है,

---

* तमाखू शब्द क्षेपक लगता है क्योंकि कबीर के समय में भारत में तमाखू नहीं थी।

बहता पानी तो भाखा है। [अर्थात् जन भाषा]

'अच्छा !!' गोसाँई जी ने सिर हिलाया।

'बलख क्या हो आया, मुसलमान हो गया ! पहले तो अवतारों को मानता था।'

'अब नहीं मानता ?' वे चौंके।

'मानता ? महाराज ! वह तो खुले आम कहता है कि राम दशरथ का बेटा मैं नहीं मानता। मेरा राम तो उससे परे है, उससे भी परे है !'

'निर्गुणिया है ?'

'नहीं महाराज ! वह तो कहता है—

'निर्गुण सगुण से परे तहैं हमारा ध्यान !'

'अरे तेरा ध्यान !!' एक वृद्ध ब्राह्मण ने घृणा से कहा।

'महाराज पहले से तो वह बहुत बदल गया है।' ऋषि ने कहा—'पहले वह जोगियों से उलटबासियाँ कहता था, छेड़ता तो तब भी था, पर अब तो खुले आम इज्जत उतारता है। उसे डर ही नहीं। मैंने कहा तो बोला कि साँई मेरा रक्षक है। क्या कहता है जानते हैं—

'बाल न बाँका करि सकै जो जग बैरी होय।'

'अच्छा जी !!' गुँसाईं जी ने कहा। 'वह है किस पंथ का ?'

'किसी का नहीं महाराज ! बस भक्ति, ज्ञान की अजीब बातें कहता है। जातपाँत वह नहीं मानता। कुछ पण्डित कथा बांच रहे थे। उधर भूखे इकट्ठे हो रहे थे। पंडितों ने उन्हें शोर करने पर डाँटा तो झट भूखों की ओर खड़ा होकर बोल उठा—

कबिर हुआ है कूकरी
करत भजन में भंग,
याको टुकड़ा डारि कै
सुमिरन करो निसंक।

'पंडित बिचारे कहाँ से लाते। चले आये।'

'सर्वनाश हो गया,' गुँसाई जी ने कहा।

वृद्ध ब्राह्मण ने कहा : अब क्या कहूँ ? 'गंगा घाट पर मैं माला फेर रहा

था। उधर से कुछ औरतें निकली। मैंनें माला फेरते-फेरते देखा कि कोई बदमाश उन्हें छेड़ न दे, बस झट ही तो बोल उठा—

माला फेरत जुग भया फिरा न मन का फेर
कर का मनका डारि दे मन का मनका फेर।
कबिरा माला मनहिं की और संसारी भेख
माला फेरे हरि मिलैं गले रहँट के देख।
माला तो कर में फिरै जीभ फिरै मुख माहिं
मनवाँ तो दहुँ दिसि फिरै यह तो सुमिरन नाहिं।

सब औरतें हँसने लगीं। मेरी तो नाक कट गई। और यही नहीं। पिंड-दान देने बहुत से गाँव के लोग आये थे। पण्डा बता रहे थे, वे सिर मुड़ा रहे थे। बोल उठा—

मूँड़ मुँड़ाये हरि मिलैं सब कोई लेओ मुंडाय,
बार बार के मूँड़ते भेड़ न बैकुण्ठ जाय।'

गुँसाई जी ने कहा: 'उसकी पिटाई क्यों नहीं होती?'

'महाराज सारी नीच जातें उसके साथ हैं। अकेला तो उसे वे लोग छोड़ते ही नहीं, शेर बना घूमता है।'

'अजी!' पुजारी नैन उजागर ने कहा: 'कथनी करनी का बड़ा हुल्लड़ मचा रखा है उसने।'

'तो भई वह कहता क्या है? सगुण नहीं, निर्गुण नहीं, फिर है क्या उसका भगवान?'

'महाराज मैंने पूछा था।' ऋषि ने कहा। 'बोला, न वह भारी है, न हल्का है, मैंने तो उसे देखा नहीं। और जो देख भी लिया होता तो तुम विश्वास कब करते। सांईं जैसा है वैसा ही रहेगा। उसे अद्भुत मत कहो, और कहते हो तो छिपा कर धरलो। वह सब तो वेद कुरान में भी नहीं लिखा। न कोई पाता है, न खोता है, उसके× पच्छ में तो सब भरपूर है, ज्यों का त्यों है।'

'उसका गुरु कौन है?'

× ईश्वर।

'गुरू को वह गोविंद से बड़ा बताता है।'

'सूफी है, यवन ?'

'नहीं महाराज !'

'तो सहज यानी होगा या पुराना शैव तो नहीं है ?

'नहीं महाराज।'

'शाक्त है ?'

'शाक्तों के लिये तो उसने जोर से कहा था—

कबिरा संगत साधु की
जौकी भूसी खाय
खीर खाँड भोजन मिलै
साकट संग न जाय।

शाक्त गाली देने लगे। रोकनेवालों ने रोका तो कबीर ने कहा कि 'कुत्ते और शाक्त को बोलने दो, जवाब मत दो।'

ऋषि ने आँखें फाड़ दीं।

'बाप रे ! डरता नहीं। वे तो भयानक लोग होते हैं ऋषि ?'

'महाराज ! कल तो उसने गजब कर दिया। कुछ सिपाही जुलाहों को मार रहे थे। कुम्हार चाक चला रहा था। कबीर आगे बढ़ आया और ललकार कर बोला—

'माटी कहै कुम्हार ते तू का रूँदे मोहि।'
इक दिन ऐसो होयगा हौं रोदोंगी तोहि।'

'सिपाही चले गये ?'

'हाँ महाराज। नगर में कुछ तपस्वी आये। लोग उनके दर्शन करने जा रहे थे। एक साधू जीवित ही समाध में उतरने वाला था। कबीर ने फट्ट ही तो चोट कस दी।'

'क्या कहा ?'

'क्या कहा था ?' ऋषि ने वृद्ध से पूछा।

'बोला', वृद्ध ने कहा—

दुर्लभ मानस जन्म है देह न बारम्बार
तरवर ज्यों पत्ता झड़ै बहुरि न लागै डार।

हमने रोका, बुद्धि की दुहाई दी तो बोल उठा—तुम तो चेले हो। आजाद नहीं हो। बँधे हुए हो—

'जैसा अनजल खाइये तैसा ही मन होय
जैसा पानी पीजिये तैसी बानी सोय।'

गुँसाईं जी हिल उठे।

काशी के दशाश्वमेध घाट पर ब्राह्मणों में स्नान करते हुए बहस हो रही थी।

रघुपति मिश्र ने कहा : क्या कहते हो। हम नहा कर चले तो कहने लगा—उस नहाने धोने से क्या लाभ जो मन का मैल नहीं जाय। पानी में मछली तो सदा ही पड़ी रहती है पर धोने से क्या बास जाती है?

पण्डित कथा वाचक राधेशरण ने कहा—मैं तो काशी छोड़ जाऊँगा।

'क्यों क्यों?' सबने पूछा।

पण्डित रुँआसे होकर बोले : अब मुझे ही बताना होगा। बोला—

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ पंडित हुआ न कोय
एकै अक्षर प्रेम का पढ़े सो पण्डित होय।

मैंने जो घूर कर देखा तो बोल उठा—

पण्डित और मसालची दोनों सूझै नाहिं
औरन को कर चाँदना आप अँधेरे माँहि।

पण्डित नीलकण्ठ भी साथ थे। हमने कहा—जुलाहे! तू समझ! पंडित कीलकण्ठ ने भी कहा तो बोलने लगा—

ज्यों अँधरें कौ हाथिया सब काहू को ज्ञान,
अपनी अपनी अपनी कहत हैं काको धरिये ध्यान।

अब भी काशी में रहने का धरम है? ब्राह्मणों को ऐसे जुलाहे फटकारने

लगेंगे तब तो काम चल चुका। प्रजा क्या कहेगी ?'

'प्रजा वही कहेगी जो अब कह रही है। सारे शूद्र उसी की जय बोला करते हैं। सत्यानाश हो गया। मुझे भंगी छू गया। मैंने खड़ाऊँ मारी तो बोला—

पँडित देखा मन यों जानी !
कहु धौं छूत कहाँ ते उपजी
तबहिं छूत तुम मानी।
नादरु बिन्दु रुधिर एक संगै
घट ही मैं घट सज्जै
अष्ट कमल* को पुहुमी आई
कहँ यह छूत उपज्जै।
लख चौरासी बहुत बासना
सो सब सरि जो माटी
एकै पाट सकल बैठारे
सींचि लेत धौं काटी।
छूतहिं जेवन छूतइ अचवन
छूतहि जग उपजाया,
कहत कबीर ते छूत बिबर्जित
जाके संग न माया।'

'अनर्थ हो रहा है। ब्राह्मणो ! जागो। धर्म के लिये उठो। उधर यवनों ने तो नाश कर ही रखा है, और यह नीच लोग तो वेद का टाट ही उलट देना चाहते हैं.........'

पण्डित रघुपति मिश्र ने हाथ उठा कर कहा—दीन बन्धु, दयानिधे, शिवशम्भो, शिवशम्भो..........

* आठ कमल का शरीर।

कबीर ने कहा : लोई! मुझे चारों ओर मुसीबत दिखाई देती है। लोग जो कहते हैं वह करते नहीं। कथनी आसान है मीठी है, करनी कठिन है विष है। लेकिन कथनी छोड़कर करनी पकड़ने से ही विष भी अमृत हो जाता है।

लोई ने बैठकर चर्खा चलाते हुए कहा : कंत! मुझे तुम्हारे वे दिन याद आते हैं जब तुम जोगियों में उलट बांसियां गाते फिरते थे।

कबीर ने कहा : मैं अपने जीवन को पलट कर देखता हूँ लोई! मुझे अजीब सा लगता है। मैं नीच कुल में जन्मा। रामानन्द गुरु ने मुझे चेत दिया। वह सचमुच एक झटका था। मैंने देखा मैं उस उपदेश के फलस्वरूप एक बार अपने पुराने भय और बंधन तोड़ सका। मैंने देखा जोगी, सूफी, अवतारवादी, पुराणवादी, वेद और कुरानवादी सब छोटे थे। और मैंने देखा भगवान का रहस्य इन सबसे परे है। मैं उसे ही गाता रहा लोई, पर अब देखता हूँ, अब अनुभव करता हूँ, कि संसार तो प्रेम है। धर्म क्या है? संसार में ढङ्ग से रहना धर्म है और कुछ नहीं।

लोई ने उठ कर कहा : कमाल पूछता था।

'क्या?'

'यही कि दादा बदलते क्यों हैं?'

'उससे कह लोई—

मारग चलते जो गिरै
ताको नाहीं दोस
कह कबीर बैठा रहे
ता सिर करड़े कोस।
कहता तो बहुता मिला
गहता मिला न कोइ।
सो कहता बहि जान दे
जो नहिं गहता होइ।

करनी बिन कथनी कथै
अज्ञानी दिन रात
कूकर ज्यों भूँकत फिरै
सुनी सुनाई बात।

लोई मुस्कराई। बोली : 'यही मैंने कहा था।'

'क्या कहा था लोई।'

'यही कि जिस तरह पहले घुटनों पर चलते हैं फिर दोनों पाँव पर चलते हैं, उसी तरह आदमी की समझ भी धीरे धीरे ही पकती है।'

लोई का ताना

मैंने पूछा था : अम्मा ! दादा कहाँ चले गये हैं ?

अम्मा तब बैठी ताना कस रही थी। वह काम करती गई और उसने कहा था। मैं पूछता वह बताती।

'बेटा ! मैं कैसे बताऊँ ?'

'क्यों ?'

'केवल यही जानती हूँ कि वे चले गये हैं।'

'तो क्या माँ वे हमें छोड़ कर चले गये हैं ! जैसे और साधू सन्यासी जोगी घर छोड़कर चले जाते हैं ?'

'नहीं बेटा ! वे ऐसे न थे। वे तो गृहस्थ थे और उन्होंने कभी बन को अपनी मुक्ति का रास्ता नहीं समझा।'

'तो फिर वे क्यों गये ?'

'बेटा ! दुनिया को जब तक आदमी घूम फिर कर देख नहीं लेता तब तक उसे चैन नहीं आता।'

'माँ चुप रही थी। मैंने उसके मुँह पर एक करुण छाया देखी थी। उसने

फिर कहा : बेटा ! तेरा बाप कोई मामूली आदमी नहीं है, इतना मैं जानती हूँ। वह बड़ा कवि है। लोग उसका नाम डरते हुए लेते हैं। जब वह काशी में था, तब लोग उससे घबराते थे। वह साधुओं की संगत में बैठता था। साधुओं से बड़े बड़े सवाल जबाब होते थे। साधू हार जाते थे। एक किसी ने कह दिया कि कबीर तो लवार है। घर में नारी के मोह में फंसा हुआ है और दुनिया को उपदेश देता फिरता है। आदमी ही तो थे वह भी। बात लग गई चले गये।'

माँ ने आँखें पोंछी।

'तो क्या वे अब कभी नहीं लौटेंगे!'

'वे अवश्य लौटेंगे बेटा। जरूर आयेंगे। वे क्या वहाँ शांति पा सकते हैं? नहीं, कभी नहीं। वे तो कहा करते थे—

तेरा सोई तुज्झ में
ज्यों पुहुपन में बास
कस्तूरी का मिरग ज्यों
फिर फिर ढूँढै घास।

यह कह कर तो उन्होंने रमते जोगियों को चुप कर दिया था बेटा।'

माँ ने बड़े कोमल और मीठे स्वर से गाया और मैंने उसके मुह पर दिव्याभा देखी—

जा कारन जग ढूँड़िया
सो तों घटि ही माँहि
परदा दिया भरम का
तातें सूझै नाहिं।
जेता घट तेता मता
बहु बाना बहु भेख
सब घट व्यापक है रहा
सौई आप अखेल।
भूला भूला क्या फिरें
सिर पर बधि गई बेल

तेरा साँई तुज्झ में
ज्यों तिल माँही तेल
ज्यों तिल माँही तेल।
सब घट रहा समाय
ज्यों चमकन में आगि
तेरा सांई तुज्झ में
जागि सकै तो जागि।
पावन रूपी सांइयां
चित चमकन लागै नहीं
ताते बुझि बुझि जाय।

माँ गा कर शाँत हुई। मैंने पूछा : अम्मा!

'क्या है बेटा।'

'माँ लोग कहते हैं वे सबसे लड़ जाया करते थे!'

'झूठ कहते हैं बेटा। बस उनमें एक बात थी। वे बुराई को देख कर चुप रहना नहीं जानते थे। ढोंगी से उन्हें चिढ़ थी। बहुत से लोग मन्दिर में बैठे माला जपते हैं, मुँह से राम राम करते हैं, छुआछूत करते हैं, पर हिंसा भी करते हैं, यह सब उन्हें पसन्द नहीं था। वे तो कहते थे—

शून्य मलै अजरा मरै
अनहदहू मरि जाय।
राम सनेही ना मरै
कह कबीर समुझाय।

मैंने पूछा : माँ! वे क्या जोगियों की तरह लोगों को डराते थे?

माँ ने सिर हिला कर बड़े गर्व से कहा—बेटा! कैसे कहूँ! जोगी क्या होंगे उनके सामने। वे तो प्रेम के भूखे थे। प्रेम! प्रेम ही उनका जीवन था पुत्र!

मां अपने उल्लास को छिपा नहीं सकी, उसने कहा—प्रेम की साधना करते करते तो उन्होंने देखा था कि यह संसार प्रेम के ही बल पर चल रहा है। माँ ने गाया—

सीस उतारै भुइँ धरैं
ता पर राखैं पाँव।
दास कबीरा यों कहै
ऐसा होय तो आव!
छिनहिं चढ़ै छिन उतरे
सो तो प्रेम न होय,
अघट प्रेम पिंजर बसैं
प्रेम कहावै सोय,
जब मैं था तब गुरु नहीं
अब गुरु हैं हम नाहिं,
प्रेम गली अति सांकरी
ता मैं दो न समांहि।

माँ तो अपने को भूल गई थी। उसे उन शब्दों में लग रहा था जैसे पिता सामने खड़े हो गये हों। उसने कहा : बेटा प्रेम रस पीने की चाह रखने वाला कभी मान नहीं रख सकता, एक म्यान में दो खड्ग तो साथ साथ रह ही नहीं सकते। तेरे पिता क्या यही नहीं कहते थे। मैं कैसे मान लूँ कि वे इसीलिये घर को छोड़ गये हैं। उन्होंने ही तो कहा था—

कांच कथीर अधीर नर
ताहि न उपजै प्रेम।
कह कबीर कस नीस है
कै हीरा कै हेम।
कसत कसौटी जो टिकें
ताको शब्द सुनाय।
सोई हमारा बंस है
कह कबीर समुझाय।

माँ जब अकेली होती तो मैं देखता कि वह ताने पर काम करती रहती, पर कभी कभी वह विह्वल स्वर से बोलने लगती : चले गये हो चले जाओ। पर सच कहो तुम्हें कभी घर की याद नहीं आती ? तुम्हें कभी कमाल याद नहीं आता ? आखिर जिस बड़े धन को खोज खोज कर हार रहे हो, उसे घर बैठे क्या जीत नहीं सकते थे ? मैं जानती थी तुम कभी कभी घबरा जाते हो। मैं जानती हूँ तुम जोगियों की तरह नीरस नहीं थे। तुमने कभी मेरा अपमान नहीं किया। और उस बार तुम सात दिन को चले गये थे तो तुमने क्या कहा था—

विरहिन देय सँदेसरा
सुनो हमारे पीव।
जल बिन मच्छी क्यों जिये
पानी में का जीव !
अँखियाँ तो झांई परी
पंथ निहार निहार,
जीहडियां छाला परा
नाम पुकार पुकार।

मैंने हँस कर कहा था : ओ बैरागी ! क्या कहते हो। कोई सुनेगा तो क्या कहेगा।

पर तुमने कहा था : लोई ! मैं और तू दो नहीं हैं। प्रेम तो मैंने तुझसे ही सीखा है। मैं तेरी वेदना को जब समझता हूँ तब ही मुझे लगता है मैं राम के पास पहुँच गया हूँ। तेरे विरह की शक्ति ही मेरी जड़ता को, मेरे अहंकार को नष्ट करती है। तू होती है तो मैं राम को अपने में पाता हूं, मुझे फिर तृष्णा नहीं रह जाती लोई ! तू प्यार करना जानती है। इस प्रेम से ही अंडकटाह चल रहा है। यह एक तरह का आलोक है।

माँ ने आँखें पोंछ लीं थी और वे फिर अपने आप से कहने लगीं थीं····

मेरे कन्त ! तुम चले गये हो । दुख तो होता है पर जब तुम लौट कर मिलोगे तब कितना न अच्छा लगेगा। तुम अपना भरमना छोड़ आओगे और मैं फिर जी उठूँगी । मुझे एक एक बात याद है। तुम जाओ। मैं तो अभी से गाती हूँ बलम, तुम जहाँ भी हो वहीं से सुनो, तुम्हीं तो कहते थे, फिर आज क्या याद नहीं आयेगी—

कैं विरहिन को मीच दैं
कैं आपा दिखलाय।
आठ पहर का दाझना
मोपे सहा न जाय ।
येहि तन का दिवला करें
बाती मेलों जीव
लोहू सींचों तेल ज्यों
कब मुख देखों पीव ।
हवस करे पिय मिलन की
औ सुख चाहै अंग।
पीर सहे बिनु पदमिनी
पूत न लेत उछंग ।
मुए पीछे मत मिलौ
कहै कबीरा राम।
लोहा माटी मिला गया
तब पारस केहि काम।
पिय बिन जिय तरसत रहै
पल पल विरह सताय।
रैन दिवस मोहि कल नहीं
सिसक सिसक जिय जाय।

और मां फूट फूटकर रोने लगी थी। मैं भी रोने लगा था, पर मां को पता न चल जाये इसलिये मैं भीतर नहीं गया था, बाहर ही घुटनों में मुँह

दिये बैठा रहा था। कब तक मां रोती रही थी यह याद नहीं रहा, पर जब भीतर गया था तो देखा था, माँ धरती पर छाती के बल सो गई थी, उसके मुँह के चारों तरफ उसके सिर के खुले बाल बिखर गये थे। और नींद में भी उसके मुख पर मुझे एक बड़ा मीठा सा दुलार दिखाई दिया, वह कितनी करुण थी,....मेरी मां....मेरी अम्मा....मेरा वह पेड़, जिसने धूप में जल जल कर भी मुझ पर छाया कर रखी थी......

माँ ने कहा था --

एक दिन कबीर बाजार में चला जारहा था। गुँसाई हरिहरानन्द चले आ रहे थे। उनकी बड़ी प्रसिद्धि थी कि वे त्यागी थे। उनके दर्शनी उनके साथ-साथ आ रहे थे।

कबीर उन्हें देखकर एक किनारे हट गया।

गुँसाई जी ने देखा। अभी तक उसने प्रणाम नहीं किया था।

पूछा : ऋृषिलाल !

'हां म्हाराज !' ऋृषिलाल ने कहा। वह उनका चेला था।

'यह जुलाहा वही है न जिसने काशी में ऊधम मचा रखा है ?'

उस वक्त भीड़ जमा होने लगी।

ऋृषि ने कहा : देखता नहीं। गुँसाई म्हाराज चले आ रहे हैं। कैसा कलि है ! प्रणाम तक नहीं किया जाता। जानता नहीं वे कितने त्यागी हैं।

कबीर खड़ा रहा। फिर उसने चिल्ला कर कहा—

कबिरा खड़ा बजार में सबकी मांगै खैर,
ना काहू से वास्ता ना काहू से बैर।

भीड़ और पास आगई।

कबीर ने फिर कहा—

कबिरा खड़ा बजार में लिये लकुटिया हाथ,
जो घर जाले आपना सो चलै हमारे साथ।

ऋषि पीछे हट गया। भीड़ चिल्लाई : कबीर की जय!

'अरे!' ऋषि ने कहा : 'अंधे होगये हो। अच्छे बुरे की पहँचान नहीं! काशी का त्यागी परमार्थी खड़ा है और तुम जय कबीर की बोल रहे हो। इसका धर्म कहाँ है?'

गुँसाई जी ने कहा : जाने दे वत्स! उसे छोड़? राह चल। कलि की कुचाल है। समय का फेर है।

कबीर ने कहा : गुँसाईं म्हाराज की जय! वे जय चाहते हैं तो क्यों नहीं बोलते तुम? अरे पागलो! काशी के रहने वालो।

जहँ आपा तहँ आपदा
जहाँ संसय तहँ सोग,
कह कबीर कैसे मिलैं
चारों दीरघ रोग।

ऋषि क्रुद्ध हो उठा। उसने कहा : ए जुलाहे! तू नहीं जानता तू किससे बात कर रहा है?

कबीर ने हाथ जोड़ कर कहा : महाराज! आप क्रोध न करैं। उसका पाप मुझे चढ़ता है क्योंकि आपका तप मेरे कारण घट रहा है।

कोटि परम लागे रहै एक क्रोध की लार,
किया कराया सब गया जब आया अहँकार।
माया तजी तो क्या भया मान तज्या नहिं जाय,
जेहिं मानैं मुनिवर ठगे मान सबन को खाय।

ऋषि भभूका हो गया। गुसाईं जी ने देखा तो भन्ना उठे। पर भीड़ ने कबीर को घेर कर कंधों पर उठा लिया था।

जब वह घर आया लोई ने कहा : घर में तो कुछ खाने को नहीं बचा। अभी तुम्हारा काम भी पूरा नहीं हुआ। फिर क्या करोगे। मेरी चिंता मत करो। मैं तो भूखी रह लूँगीं, पर तुम्हें तो भूखा नहीं देख सकती।

कबीर सोचता रहा। फिर कहा : लोई। हम गरीब हैं। लेकिन क्या तू इससे डरती है?

लोई ने अभय नेत्रों से देखा।

कबीर ने कहा : यह गरीबी बहुत अच्छी है लोई। गरीब ही सबका मुँह देखता है। दीन को कोई नहीं देखता। दीन को गर्व नहीं होता। मुझे यह दीनता भली लगती है लोई, यह नर को देवता बना देती है। दीन ही सबसे आदर से बात करता है। वही तो बड़ा है लोई जिसमें स्वभाव की नम्रता है।

लोई ने कहा : हम मेहनत करके खाते हैं कंत। किसी का माल तो नहीं मारते?

कबीर ने कहा : हम झुकते हैं, परन्तु अपने को यों झुकाना अच्छा है कि दूसरों केलिये झुकना। झुकने वाला पलड़ा ही तराज़ू में भारी होता है लोई। पानी ऊपर नहीं टिकता, नीचे आकर टिकता है। जो नीचा होकर भरता है वह पीता भी है, जो सिर्फ ऊँचा बनता है, वह तो प्यासा ही चला जाता है। ये जो दबे हुए अधीन हैं, नीचे नीचे हैं, यह सब पार लग जायँगे लोई, पर जो ऊँचे हैं; कुलीन हैं, इनका जहाज अभिमान का है, वह इस संसार के समुन्दर में हमेशा डगमगाता है। यह डूब भी जायेगा।

लोई ने कहा : दीन हम नहीं हैं कंत! दीन तो वे हैं जो आत्मा बेचकर पाप से पेट भरते हैं, जो कुछ दिनों के रहने के लिये दूसरों के पेट काटते हैं, गर्व करते हैं। लेकिन मैं तो और बात कहती थी!

'वह क्या?'

'जो कहीं कोई साधू आ गया तो कैसे सत्कार करोगे।'

कबीर ने दरी पर लेट लगाते हुए कहा—

चाह गई चिंता गई
मनुआ बेपरवाह।
जिनको कछू न चाहिये
सोई सहंसाह।
मरि जाऊँ माँगू नहीं
अपने तन के काज।

परमारथ के कारने
मोहि न आवै लाज।

लोई प्रसन्न सी पास पड़ी चटाई पर लेट रही।

माँ ने कहा : बेटा कमाल।

मैं पट्टी बुदका लिये बैठा था। पड़ोस के बच्चों से मैं अच्छा लिखता था। माँ ने मेरी पट्टी देखी। मुझे क्या खबर थी कि वह कुछ भी पढ़ना नहीं जानती थी। पर उसकी आँखें तेज़ थीं।

मैंने पूछा : अम्माँ! कैसी लिखी है।

'अच्छी है बेटा।' माँ ने कहा और खाट की पाटी से पीठ टेक कर बैठ गई। बोली : 'तू अपने मन से भी कुछ लिख सकता है?'

'नहीं अम्मा! कोई बोल दे तो लिख लूँगा।'

'सच!!' माँ की आँखों में आँसू आगये। वह बहुत प्रसन्न हुई थी। उसकी खुशी देखकर मेरी हिम्मत बँधी थी। कहा था : तू बोल माँ। मैं लिखूँगा।

'लिख लेगा?' उसने अचरज से पूछा।

'क्यों नहीं माँ! तू बोल तो सही।'

'अच्छा लिख।' माँ ने कहा।

मैं लिखने लगा।' माँ बोलने लगी—

मन तू मानत क्यों न मना रे।

'धीरे धीरे बोल अम्मा।'

'अच्छी बात है।'

माँ बोलती गई। मैं लिखता गया।

लिख कर मैंने कहा : पढ़कर देख अम्मा! ठीक लिखा है?

वह क्षण भर ठिठकी। फिर उसने पढ़ा :

मन तू मानत क्यों न मना रे
कौन कहन को कौन सुनन को

दूजा कौन जना रे।
दरपन में प्रतिबिंब जो भासै
आप चहूँ दिसि सोई
दुबिधा मिटै एक जब होवै
तो लख पावै कोई।
जैसे जल ते हेम बनत है
हेम धूम जल होई
तैसे या तत वाहू तत सों
फिर यह अरु वह सोई,
जो समझै तो खरी कहन है
ना समझैं तो खोटी,
कह कबीर दोऊ पख त्यागै
ताकी मति है मोटी।

माँ चुप हो गई। मैंने कहा ठीक है?

'हाँ।'

'बिल्कुल ठीक है?' मुझे आश्चर्य्य हुआ।

'हाँ!' माँ ने कहा।

'यह कैसे हो सकता है!' मैंने कहा—'आज तक ऐसा कभी नहीं हुआ? अब के कैसे जादू हो गया। तू बताती क्यों नहीं?'

माँ ने मुझे रूठा देखा तो मुझे छाती से लगा लिया। कहा: बेटा। बहुत दिन बाद वह दिन भी आगया। तेरे बाप के अनमोल बोल बिखरे पड़े हैं। उन्हें तू बटोर लीजो भला।

माँ को कितनी शांति मिल रही थी। मुझे तब मालूम न था कि वह पढ़ना लिखना नहीं जानती थी पर वह इतना जानती थी कि यह सब कुछ कीमती कीमती था, जिसकी रक्षा करना आवश्यक था।

उस समय मैंने पूछा था: माँ! तू ही क्यों नहीं लिखती?

माँ ने कहा था। 'बेटा! मुझे उनकी बहुत सी बात याद है। ऐसी मन पर लकीर सी खिंची धरी है। तू लिखेगा न? आ काम बाँट लें। मैं बोलूँगी

तू 'लिखेगा। ठीक है न ?'

'हाँ !' मैंने सिर हिला कर कहा था। माँ ने मुझे चूम लिया था। सच मैं पिता की धरोहर ही तो था !!

और फिर माँ लिखाती, मैं लिखता।

उस दिन शाम हो गई थी।

माँ बड़ी सी नांद में घड़े से पानी डाल रही थी।

उसी समय द्वार पर मैं चिल्लाया : माँ ! देख तो, ले दादा आये हैं। माँ के हाथ से घड़ा छूट गया।

मैंने देखा सिर उठाये हुए मुस्कराते हुऐ मेरे पिता ने कहा—फूटा कुंभ जल जलहि समाना !

माँ ने लाज से माथा ढँक लिया और मुस्करा उठी। उस समय वह पूर्ण तृप्त सी खड़ी रही।

पिता अचकचा गये कहा : मैं आ गया हूँ लोई।

'तुम गये ही कहाँ थे कंत। मुझे तो यह याद नहीं कि तुम्हारे बिना भी मैं कभी यहाँ रही थी।'

पिता की आँखों में आँसू आ गये, जैसे वे इतने दिन बाद आज पूर्ण हो गये थे। उन्होंने गद्‌गद् स्वर से कहा—

जिन पावन* भुई+ बहु फिरे
घूमे देस बिदेस
पिया मिलन जब होइया
आँगन भया बिदेस।
नोन गला पानी मिला
बहुरि न भरि है गौन,

---

* पाने को + पृथ्वी पर।

सुरत शब्द मेला भया
काल रहा गहिमौन !
कहना था सो कह दिया
अब कछु कहा न जाय,
एक रहा दूजा गया
दरिया लहर समाय।

और वे दोनों एकटक देखते खड़े रहे। दोनों के नयनों से आँसू बह रहे थे। मैं समझा नहीं। मैंने पिता का हाथ पकड़ लिया और कहा : अम्मा ! देख दादा आये हैं।

माँ चौंक उठी। उसने आँसू पोंछ लिये। पिता के चरण छुए और ऐसे हँस कर खड़ी हो गई जैसे वे कहीं बाहर से नहीं आये थे, सिर्फ बजार होकर आये थे।

पिता बैठ गये। मैंने देखा वे बेसुध से थे।

मैंने कहा : दादा कहाँ गए थे।

पिता ने मेरा सिर चूम कर कहा : बेटा मैं राम ढूँढने गया था।

'कौन राम दादा ! मिला। कहाँ तक गए थे ? कहाँ मिला ?'

पिता ने मुस्करा कर कहा—'मिल गया बेटा। बलख तक गया, पर कहीं नहीं मिला। वह तो मैं घर ही छोड़ गया था !'

'घर में ? कहाँ है दादा।'

'करघे में है बेटा। यही अन्न देता है न ? मेहनत करके खाना ही राम का र र है। और दूसरों की उससे सेवा करना ही उसका म म है। इसके अलावा कुछ नहीं है।

माँ पास आकर बैठ गई। कहा : कंत ! कमाल बहुत रोता था।

'झूंठी', मैंने कहा–'मैं रोता था कि तू रोती थी। तू ही तो कहती कि···

'छिः छिः बेटा। क्या कहता है ?'

मैं चुप हो गया तो दादा ने कहा : बता बेटा। कह न ? क्या कहती थी अम्माँ !

मैंने माँ की ओर देखा। माँ मुस्करा रही थी। आँखों में मना कर रही

थी, मैं देख रहा था, पर होठों की मुस्कान में साहस भी तो दे रही थी। मैं कभी पिता की ओर देखता, कभी माँ की ओर। पिता ने देखा तो कहा : यही तो है वह राम। भगवान भी तो माँ ही है। वह भी इतना ही स्नेही है, वह भी तो इतना ही पूर्ण है। लोई! उसे मैं बाहर ढूँढने गया था!'

'यही तो माँ कहती थी।' मैंने कहा।

माँ ने मुँह फेर लिया, लजा कर। मैंने कहा : 'दादा! अम्मा कहती थी तेरे दादा बहुत अच्छे आदमी हैं पर मुझे एक ही दुख लगता है कि वे इतने समझदार होते हुए भी अपनी असलियत को भूल गए। अगर हम माया भी थे, तो उन्हें क्या कायरों की तरह घर छोड़ जाना चाहिए था! लोभ मोह काम को जीतना था तो एकांत में जाकर क्या छोड़ना! जहाँ भगवान की जरूरत है वहीं तो उसकी साधना करनी चाहिए।'

पिता क्षण भर अवाक् रहे। फिर कहा : तूने रटा है यह सब, क्यों?

'माँ ने सिखाया था।'

'क्यों?'

'कहती थी अगर मैं मर गई तो पिता के मिलने पर यही कह दीजो।'

पिता बैठ कर माँ की ओर देखते रहे। उनके नेत्रों में क्या था यह तो मैं नहीं जानता, पर माँ शर्मा गई थी। पिता ने बड़ी देर तक देखा था और फिर उन्होंने धीरे से कहा था, 'ठीक कहती है लोई। जो हंस की तरह दूध पानी अलग कर लेता है, वही पार उतर पाता है। साहेब का ही तो दीदार सब जगह दिखाई दे रहा है। उनकी बनाई दुनियाँ में अपने मन के मैल की छाँही को माया बना कर दूसरों पर थोपना पाप ही तो है। आधा भरा घड़ा ही छलकता है बेटा। लोई ठीक कहती है। पानी से ही हिम बनती है, हिम ही गल कर पानी बनता है। जो होता है वही बनता है, कहने लायक कुछ भी नहीं रहता बेटा।

और वे बोल उठे—

> गगन गरजि बरसै अमी बादल गहिर गँभीर।
> चहुँ दिसि दमकैं दामिनी भीजैं दास कबीर॥

अब गुरु दिल में देखिया गावन को कछु नाहिं
कबिरा जब हम गावते तब जाना गुरु नाहिं।

और पिता ने कहा : लोई ! बहुत दिन पहले तूने कहा था न, तो मुझे अब मालूम हुआ है। मैं जब एक से लगा, तो सब एक होगया। सब मेरा हो गया, मैं सब का हो गया, मुझे आज कोई दूसरा दिखाई नहीं देता।

माँ उठी। रोटी ले आई।

मैंने कहा : माँ ! तू क्या खाएगी। रोटी तो यह तीन ही थीं।

माँ ने मुझे फटकारते नयनों से देखा।

परन्तु पिता के नयनों में फिर आँसू आ गए। कहा : लोई ! बैठ ! आज हम तीनों मिलकर खायेंगे। दूर-दूर तक भटकता रहा हूँ। आज प्रकाश मिल रहा है तो उसे पूर्ण अविनासी हो जाने दे। वह प्रेम और संसार में ही मनुष्य को मिलता है। वह रहस्य है और अगम है, सबके परे है, परंतु उसका अंतिम सान्निध्य इस ममता और निष्कलंक प्रेम में ही है। वह भटकन जो इस प्रेम को बुरा कहती थी उसने मुझे संन्यासियों की तरह भीख माँग कर जंगल, वन, ग्राम, पहाड़ों पर ढोंगियों और अतृप्त छटपटाती आत्माओं के साथ घुमाया। वही माया थी। वह अहं ही माया का मूल था। वह माया, घृणा का ही परोक्ष रूप थी। उसने सहज सत्य को ढँक लेना चाहा। मैं उस माया को छोड़ आया हूँ। मेरा सांई यहीं है लोई। वह माया ठगिनी नैना झमका कर रोक रही थी। उसने बड़े बड़े ज्ञानियों को डुलाया है, उसने हाथ की मुट्ठी में सार तत्त्व को बंद करवाके, त्रिभुवन में चक्कर लगवाये हैं। बड़े-बड़े महात्माओं को उस मन के भय ने कभी स्त्री, कभी बालक, कभी घर, जाने क्या क्या रूप धर कर डराया है। गोरख, मच्छेंन्द्र, दत्तात्रेय, राम सब उसके चक्कर में फँस गए। सांई ने मेरी रक्षा कर ली है। लोई। सांई ने मुझे बचा लिया। मेरे यहाँ तू थी। तूने मुझे बताया है—और पिता ने अत्यन्त व्याकुल परन्तु विभोर स्वर में कहा—

हरि से तू जनि+हेत कर
कर हरिजन से हेत

+मत

माल मुलुक हरि देत हैं
हरिजन हरि ही देत।

माँ बैठ गई। पिता ने एक एक रोटी बाँट दी। मैंने कहाः खाओ दादा। तुम्हें मालुम है माँ मुझे तुम्हारा कौन सा गाना सुनाती थी!

मा ने कहा : तू खाता है कि बात करता है?

पिता ने कहा : क्या गाती थी बेटा?

मैंने धीरे से कहा :

प्रीतम को पतियाँ लिखूँ
जो कहुं होय बिदेस
तन में मन में नैन में
ताको कहा सँदेस।

पिता ने सुना तो रोटी रख दी। झूमने लगे। कहा : लोई ! वाह !

उठा बगूला प्रेम का तिनका उड़ा अकास
तिनका तिनका से मिला तिनका तिन के पास

और माँ ने धीरे से कहा : याद है। उस दिन क्या कहा था तुमने—

सौ योजन साजन बसै
मानौ हृदय मंझार,
कपट सनेही आगने
जानु समंदर पार।
यह तत वह तत एक है
एक प्रान दुई गात,
अपने जिय से जानिये
मेरे जिय की बात।

पिता ने कहा : लोई ! आज में मुक्त हो गया हूँ लोई। आज कोई फाँस नहीं रही—

कबिरा हम गुरु रस पिया बाकी रही न छाक,
पाका कलस कुम्हार का बहुरि न चढ़ली चाक।

तब माँ के कहने से हम खाने लगे थे। एक-एक ही तो रोटी थी। खतम

हो गई। माँ ने और पिता ने पानी पिया। मेरा पेट तो वह मोटी रोटी खाकर भर गया। पर वे दोनों भूखे रह गये!

माँ ने पूछा नहीं कि पिता कहाँ कहाँ गये थे। मुझे कौतूहल हो रहा था। मैंने मौका देखकर पूछा : दादा।

'क्या है रे!'

'तुमने क्या क्या देखा दादा!'

'कुछ नहीं देखा बेटा। जो देखने लायक था वह तो घर में ही था। सब चलने चलने की कहते थे, मुझे अँदेसा तो होता था, कि जब साहब से ही परिचय नहीं है, तो कौनसी ठौर पहुँचेंगे, बाट बिचारी क्या कर सकती है अगर पथिक सुधार के नहीं चले। अपनी राह छोड़ कर कोई दूर दूर चलने लगे तो! ऐसा कोई न मिला जो हमें उपदेश देता। ऐसा कोई न मिला जिससे मन लग कर रहता। सबको मैंने अपनी आग में ही जलते हुए देखा। जैसी कथनी हो वैसी ही करनी भी चाहिये कमाल!'

मैं समझा नहीं। माँ जरूर सुनती रही। उसने कहा : भूल क्यों नहीं जाते उस सबको।

पिता क्षण भर माँ की ओर देखते रहे। कहा : लोई मैं क्या करूँ। तेरा संग पाकर भी मैं न सुधरा।

संगत भई तो क्या भया हिरदा भया कठोर
नौ नेजा पानी चढ़े तऊ न भीजै कोर।
गुरू बिचारा क्या करै शिष्यहि में हैं चूक
शब्द बाण बेधे नहीं, बाँस बजावै फूक।

माँ ने कहा : तुम सच नहीं मानोगे।

वह प्रसन्न थी। वह आनन्द तो मैं नहीं समझा था, पर आजतक वह चेहरा नहीं भूला हूँ। आज मुझे याद आने पर लगता है कि वह तो माता धरती थी, खूंदी गई, रौंदी गई, सूरज ने तपाया, पवन ने धू धू करके अंग अंग की चाम को छार छार कर दिया, पर जब बादल आया और बरसने लगा, तो उसने एक भी शब्द नहीं कहा कि तू कहाँ चला गया था। बादल बरसा रोम रोम

सिंचित कर गया। धरती हँस उठी। उसने फिर फूलों की झड़ी लगाई। और मैं क्या कहूँ—

आसमान का आसरा छोड़ प्यारे उलटि देखो घट अपना जी
तुम आप में आप तहकीक करो तुम छोड़ो मन की कल्पना जी
बिन देखे जो निज नाम जपे सो कहिए रैंन का सपना जी
कबीर दीदार परगट देखा तब जाप कौन का जपना जी।

आरम्भ

शाम हो गई थी। विश्वनाथ के मन्दिर में घण्टे बजने लगे थे। घननन घननन का नाद गूंज रहा था। बाहर बने विशाल नंदी काले पत्थरों के कारण चमक रहे थे। मन्दिर के विशाल स्तम्भों पर अंधेरे की छायाएं पड़ने लगी थीं। और दीपाधारों में लटकती दीपशिखाएँ जगमग जगमग कर रहीं थीं। असंख्य दर्शनी आते, घण्टों को बजाते और फिर भीतर चले जाते, शिव-लिंग का दर्शन करते और लौट आते। भीतर से कभी कभी समवेत वेदध्वनि उठती और तब गंधधूम और फूलों की सुगन्धि काँपने लगती।

पथ पर एक सोलह बरस का लड़का खड़ा था। वह डरता हुआ सा देख रहा था। हठात् वह आगे बढ़ आया। उसने कहा : काका !

'कौन ?' एक अधेड़ आदमी ने मुड़ कर कहा : 'कबीर !'

'हाँ काका, मैं ही हूँ।'

अरे तू यहाँ क्या कर रहा है !'

'कुछ नहीं ! वैसे ही खड़ा था'

'लेकिन यह वैसे ही खड़े होने की जगह तो नहीं। वह तो गनीमत है

आगे जाकर अपना आसन नहीं जमाया, वर्ना बुरे हाथ पड़ते।'

'क्यों?'

'जैसे तू जानता नहीं। तू जुलाहा, मैं जुलाहा। कौन नहीं जानता कि यहाँ के पुजारी कितने कट्टर हैं! कोई देख लेता तो बावेला मच जाता। काशीराज तक खबर पहुँचती। वे सारे जुलाहों को आड़े हाथों लेते। और मेरी तो आफत ही थी। मैं ठहरा देवीलाल, उनके मनसबदारों का जुलाहा। मुझसे कहते : क्यों देवी! तूने भी जोगियों के असर में सिर उठाया है? क्या कहता मैं कबीर! चल बेटा घर चल।'

'डरते क्यों हो काका?' कबीर ने कहा—'मैं क्या भीतर थोड़े ही जाता था। पर हमें वे इसी से तो नहीं जाने देते न कि हम नीच जात माने जाते हैं? काका हम नीच जात क्यों है?'

देवीलाल ने कहा : शश····धीरे बोल बेटे। तूने इनका घमण्ड नहीं देखा।

'घमण्ड?' कबीर ने कहा 'मैं देखता आया हूँ आज। दावत हो रही थी। झूंठन फिक रही थी। बाहर भंगी बैठे थे और वहाँ ठाकुर ऐसे झूंठन फेंकता था कि कुत्ते और भंगी के बच्चे साथ-साथ झपटते थे। कितना भयानक लगता था वह सब! इतने बेरहम यह कैसे हो जाते हैं काका?'

काका देवीलाल ने कहा : 'चल बाहर। रुके मत तू कबीर! ग़रीब की हर जगह आफत है। जिस पर जात अगर नीच हो गई तो समझ ले सत्यानास हो गया। क्यों, तू क्यों मरता है?'

'मैं मरता नहीं काका। सोचता हूँ। वह तो बड़ा महन्त है न?

'हाँ बेटा उसका बड़ा मान है।'

'मान है, पर काम तो उसके बड़े नीच हैं काका। सुबह कहारिन को छेड़ रहा था। वह रो रही थी।'

'कोई कुछ कह रहा था?'

'कुछ नहीं।'

'देख ले तू ही। अभी तीन दिन पहले की बात है। पंडों ने औरत के जेवर उतार लिए और ल्हास गंगा में उतार दी। जिजमान रोता चिल्लाता

लौट गया। कोई सुनता है?'

'काका! वे पण्डित जी जो गङ्गा तीर पर कथापुराण सुनाते हैं, वे तो दया धरम की बात करते हैं?'

'क्या कहता है वह?'

'यही कि ब्राह्मण की पूजा करो अपना लोक परलोक बनाओ।'

'सो तो ठीक कहता है वह। सब मानुस एक से तो नहीं होते कबीर।'

'पर मुझे यह सुनकर अजीब सा लगता है। क्या सचमुच हम इन लोगों से कुछ नीचे हैं?'

देवीलाल उत्तर नहीं दे सका। वह आगे चलता रहा। कबीर ने ही फिर कहा: जिसके संग दस बीस हो जाते हैं वही महन्त हो जाता है काका।

'बड़ा बातूनी है तू रे!'

'काका मैं तो बदला लूँगा।'

'किससे?'

'उसी महन्त से!'

'किस बात का?'

'काका, तमाम पुजारी यहाँ वहाँ जगह-जगह खूब पैसा लूटते हैं। यह मंदिर है? छूआछूत तो ऐसी जबर्दस्त है कि देख कर मेरा दिल काँप जाता है। परंतु इनके कर्म तो इतने नीच हैं कि कहा नहीं जाता। पाखण्ड, घृणा, अहंकार, और ईर्ष्या ही इनके भीतर भरी हुई है।'

'भरी हों तो वे अपना फल आप पायेंगे कबीर। तुझे ओखली में सिर देने की जरूरत ही क्या है बेटा? भगवान को ही सुख देना मंजूर होता तो वह नीच कुल में हमें जनम ही क्यों देता? और जब जीवन में नरक पाया ही है तब उसे चुपचाप भोग कर अगला जनम क्यों न ठीक बना लिया जाए?'

जुलाहों की बस्ती आने लगी। देवीलाल चला गया। कबीर खड़ा रहा। वह अभी घर जाना नहीं चाहता था। अभी उसके भीतर तरह-तरह के विचार उठ रहे थे। जब वह घर पहुँचा तब आधी रात थी।

कबीर धीरे से टट्टी हटा कर भीतर घुसा।

'कौन है?' नीमा ने बिस्तर में पड़े-पड़े पूछा।

'मैं हूँ अम्मा!'

'कहाँ चला गया था बेटा?' वृद्धा ने खाँसते हुए कहा। 'तेरा बाप जब से चला गया तब से मैं ही तो हूँ। क्या तुझे मेरी याद नहीं आती?'

'अम्मां!' कबीर ने उसके पास बैटकर कहा: 'कैसी बात करती है! मैं गया ही कहाँ था?'

और उसकी आँखों में वृद्ध नीरू का चित्र खिंच गया। वही तो उसका पिता था, पालने वाला था। माँ नें ममता में कितना मर्मांतक आघात किया था।

नीमा खाँसने लगी। खाँसते खाँसते उसकी आँखों में पानी आ गया।

कबीर को लगा खांसती माँ थी, पर फंदा उसकी अपनी ग्रीवा में अटक रहा था। उसने खाट पर बैठ कर माँ को सहारा दिया। पानी पिलाया। कुछ देर बाद जब नीमा सुस्थिर हुई तो उसने कहा: बेटा!

'क्या है माँ!'

'जानता है मैं बूढ़ी हूँ।'

'नहीं, मुझे यह भयानक बातें नहीं सुननी है।'

माँ हँसी! वह दुलार की उमड़ती धारा थी। कहा: बेटा! अब मैं जियूंगी भी तो कितने दिन, आखिर तुझे कोई तो सहारा चाहिये। रोटी कौन करेगा तेरी?

'मैं खुद कर लूंगा अम्मा! तू फिकर न कर।'

'अच्छा सुसरे! मैं अब बन्द कर दूंगी, तो दो दिन में तुझे आटे दाल का भाव मालुम पड़ जायेगा।'

वृद्धा हँसी! कबीर भी। वृद्धा ने कहा: बेटा! तू माँ को चाहता है,

उसके बारे में कुछ भी बुरा नहीं सोचना चाहता न ? पर एक बात याद रख ले जैसे एक दिन तेरा बाप चला गया, वैसे ही एक दिन तेरी यह माँ भी चली जायेगी और बाप की कमी को तो बेटा मैंने खलने न दिया, पर मेरी कमी को पूरा करने के लिये क्या तुझे किसी नये सहारे की जरूरत नहीं है ?

कबीर नहीं बोला। लगता था वह सोच रहा था। मृत्यु आयेगी। वह अवश्य आती है।

और जिस क्षण मनुष्य की जीवन की ममता और शक्ति ठहरकर मृत्यु के बारे में सोचने लगती है उसी क्षण उसमें एक नयी तन्मयता जागृत हो उठती है, जो जीवन का सम्मान करना जानती है।

मां ने फिर कहा : बेटा ! इस दुनिया में कोई किसी का सहारा नहीं होता, पर घर वाले ही उन सबके मुकाबले में अपने होते हैं। मरे की मिट्टी तो अपना धरम संभालता हैं, पर जीती मिट्टी के लिये भी तो करने वाला कोई होना चाहिये। तू बाहर से आता है, उस वक्त कोई दो बात पूछने को न होगा, तो तुझे यह घर काटने को दौड़ने लगेगा कबीर ! आदमी चाहता है कि कोई उसके सुख दुख में सवाल जवाब करे। तू रूठे कोई मनाये। कोई और मान करे, तो तू उसे समझाये। बेटा, आपस की प्रीत से ही यह दुनिया हल्की होकर चलती है।

'तू यही बातें करती रहेगी या मुझे कुछ खाने को भी देगी?' कबीरने कहा।

माँ हँसी और फिर खाँसी ने घेर लिया।

कबीर ने देखा, वह कंकाल खाँसी की चपेट में थर्रा उठता था। जैसे साक्षात् मृत्यु ने बुढ़ापे के जाल में फँसा लिया था और बार बार झकझोर उठता था। जीवन क्या सचमुच ऐसी ही दीर्घ यंत्रणा थी। कबीर को लगा वहाँ मां नहीं थी,एक प्राणी अपने जीवन के लिये मृत्यु से संघर्ष कर रहा था। वह चित्र भीतर उतर गया। जब पिता मरे थे,उसका चित्र उसे याद नहीं है। तब वह सात बरस का था। तब से अपमान में वह जीती रही है। उसने चक्की पीसी है, ताना बुनकर बाना डालना उसी ने कबीर को सिखाया है। उसका ही सिखाया कबीर वस्त्रों को लेजा लेजा कर बाज़ार में बेचता रहा है। जो कुछ आमदनी होती रही है, उसी से दोनों किसी तरह पेट भरते रहे

हैं। कभी कभी जब किसान आते हैं तब काशी के जुलाहों में जान में जान आती है। वर्ना सिपाही आते हैं तो मन चाहे मोल उठा ले जाते हैं। उनकी बात सुनने वाला कोई नहीं। किसान लगान देते नहीं थकता, चमार बेगार देता है। जगह जगह बधन है, अछूत हैं, और कबीर जुलाहा बैठा बैठा देखता है कि ऊँची जात के लोग, मुसलमान सिपाही, सब, सब ही जुलाहों को दबाते हैं और वे दबते हैं। लेकिन क्यों?

कबीर मां की पीठ सहलाने लगा। बूढ़ी कुछ देर में ठीक हुई और उसने धीमे से कहा: 'रोटी वहाँ हँडिया में कपड़े में लिपटी रखी है। ले ले। मुझसे उठा नहीं जाता। हे भगवान! बुला क्यों नहीं लेता?'

वह फिर कहने लगी—'बेटा! मेरी मान जा बूढ़ी की असीस ले। छोटी सी बहू ले आ फिर देख तेरे आँगन में कैसा उजाला हो जायेगा।'

'अच्छी बात है मां', कबीर ने कहा: 'पहले रोटी खालूँ फिर विचार करूँगा।'

'तेरी मर्जी।' बुढ़िया ने कुछ खीझ कर कहा, जैसे इतनी मेहनत उसने व्यर्थ ही की थी, जैसे वह तो रस्सी सरकाती गई, पर घड़ा पानी में नहीं, सूखे कुए की तह में जाकर टकराया। और वह फिर लेट गई।

कबीर रोटी लेकर बाहर हल्की चाँदनी में आ गया। और खाने लगा। उस समय पीछे किसी की हल्की पगचाप सुनाई दी।

'कौन? लोई?' कबीर ने कहा—'इस समय? जानती है कौनसा पहर है?'

वह पतली दुबली पन्द्रह साल की लड़की अपने मैले लँहगे को समेट कर बैठ गई और कहा: 'मुझसे पूछते हो? तुम्हें क्या पहर घड़ी की चिंता नहीं? मैं कबसे बैठी तुम्हारी राह देख रही हूँ।'

'क्यों?' कबीर ने कहा—'सोई नहीं? घर के लोग कहाँ गये?'

'सो गये। सबकी अकल मेरी तरह खराब तो नहीं।'

कबीर ने हाथ रोटी से अलग करके कहा—'तू तो कभी ऐसा नहीं कहती थी लोई। आज कैसे कहती है?'

'कहती हूँ यों कि मेरी बनाई चटनी पत्ते पर रक्खी सूख गई और मैं बैठी रही कि कब तुम आओ, कब खिलाऊँ। जानती हूँ मां बीमार है। तुम्हें तो

कोई फिकर नहीं। बेचारी दिन रात खटती है। मुझे तो दर्द होता है।'

कह कर उसने पत्ता हाथ से निकाल कर सामने रख दिया। बोली : चख के देखो, कितनी अच्छी बनी है!

कबीर ने खाकर कहा : 'बहुत स्वाद की बनी है लोई। माँ के बाद मुझे तेरे ही हाथ का बनाया अच्छा लगता है।'

लोई लजा गई। कहा : 'क्या बकते हो। आधी रात के बखत कोई ऐसे कहता होगा। कोई सुनेगा तो क्या कहेगा?'

कबीर ने टोका : 'अरे मैंने ऐसा क्या कहा है री जो इतना घुड़कती है? अभी तो तुझे माँ के लिए दर्द आ रहा था न?'

'अच्छा तुम्हें नहीं आता?' लोई ने पूछा।

'क्यों नहीं आता लोई। मैं क्या बैठा रहता हूँ? तू बता। मैं दिन रात बुनता रहता हूँ, तब कहीं जाकर पेट भरता है! तू क्या जुलाहिन नहीं है, तू क्या हालत नहीं जानती?'

'मैं सब जातनी हूँ पर रोती नहीं तुम्हारी तरह। तुम्हें तो रट लग जाती है तो बस लग ही जाती है।'

माँ ने पुकारा : बेटा कबीर!

'हाँ अम्मा आया।' कबीर ने उत्तर दिया।

'क्या कर रहा है बेटा वहाँ! अरे ओस गिर रही है। वहाँ तेरे पास कौन है बेटा?'

'माँ लो'.........

'छिः' लोई ने मुँह पर हाथ रख दिया—'चिल्लाते क्यों हो। ऐसे बदनाम क्यों कराते हो। नहीं समझते तो चुप रहो।'

कबीर ने मुस्कराकर कहा : आया अम्मा लो। अभी अभी आया।

लोई ने कहा : 'मेरा नाम यों चिल्लाते हो, पहले इसका हक़ पालो कबीर। ऐसे ही आधी रात को न अलख जगाने दूंगी मेरे नाम की।'

'अच्छी बात है लोई।' कबीर ने कहा : 'तेरा दादा न मानेगा तो?'

'क्यों न मानेगा? तू क्या जुलाहा नहीं है?'

'हूँ तो।'

'फिर आदमी कि है जानवर है ?'

'आदमी सा ही लगता हूँ, पर यह तो तेरे भाई बंधों पर है, वे तो उसे ही आदमी मानेंगे जो उन जैसे होंगे ।'

'क्या मतलब ?' लोई ने खीझ कर कहा—'वे तुम्हारी मत में मानुस नहीं है ?'

कबीर ने कहा : जा परमेसुरी ! ताना खेंचती है तो आफत करती है ।

'कैसे चली जाऊँगी । आधी रात तक क्या मैं चटनी लिये बैठी थी !'

'तो ?'

'तुम्हें हया नहीं लाज नहीं, मुझसे कहलाते हो ।'

'आखिर बात क्या हुई कह न ?'

'दादा मेरा ब्याह तय कर रहे हैं । तुम क्यों नहीं अम्मा से कहलवाते ?'

'क्या कहलवा दूं ?' कबीर ने पूछा—'यही ठीक रहेगा कि हमारे घर में आदमी कम हैं । एक चटनी पीसने वाली चाहिये । ठीक रहेगा ?'

लोई मुस्कराई । कहा : 'मैं तुम्हें इतनी लड़ाका दिखती हूँ, क्यों ! मेरा क्या है । रूखी सूखी खाओगे आप बुद्धि ठिकाने लग जायेगी ! अच्छा मैं जाती हूँ ।'

'ठहर लोई । दिन भर के बाद अब तो मिली है ।'

'मैं तो पहले भी मिल सकती थी । पर तुम ही चले गये थे ।'

'कहाँ गया था जानती है ?'

'नहीं ।'

'मैं मरघट गया था ।'

'हाय राम !' लोई ने कहा—'मैं भी तो पूछूँ क्यों ?'

लौट रहा था लोई । रास्ते में मैंने मुर्दा जाते देखा । कोई बूढ़ा था । बड़ी झालर वालर बजा कर ले जारहे थे । मैंने सोचा क्या बात है । जाकर देखनी तो चाहिये, सो चला गया ।'

लोई डरी सी बैठी रही ।

'तू बोलती क्यों नहीं ?' कबीर ने पूछा ।

'मैं अब बोलूँ भी क्या ?'

'क्यों ?'

'तुम तो जोगी हो रहे हो !'

कबीर उसके मुख को एकटक देखता रहा। लोई ने धीरे से कहा—ऐसे न देखो मुझे डर लगता है।

'क्यों ?' कबीर चौंक उठा।

'इस तरह देखते हो मुझे कुछ पराया समझते हो। अविश्वास से कुछ जो ढूंढ़ते से लगते हो, तो मुझे लगता है कि मैं तुमसे बहुत दूर हूँ। यह मुझे अच्छा नहीं लगता।'

कबीर ने उसका हाथ पकड़ कर कहा-'लोई ! मैं तुझसे दूर नहीं हूँ। मैं अपने आपसे जब दूर होने लगता हूँ तब मुझे कुछ डर सा लगने लगता है।'

'अपने आपसे कौन दूर होता है भला।'

'मैं होता हूँ लोई। राह पर चलते हुये लगने लगता है कि देह जली जा रही है और इस शकल सूरत का आदमी जो कबीर कबीर कहलाता है, वह असल में कोई और ही है, जिसे जानना चाहिये। और मरघट में मुझे वहाँ जान पहचान सी लगी। मुझे लगा मैंने वहाँ इतना दुख देखा, इतना दुख देखा कि मुझे जीवन में एक विश्वास सा हो गया है।'

'विश्वास !' लोई ने धीरे से कहा—'जो इसे खो देते हैं वे कभी चैन नहीं पाते, ऐसा दादा कहते थे।'

'तू समझती है लोई।' कबीर ने आश्चर्य से पूछा !

'नहीं।' लोई ने कहा --'कुछ नहीं समझती, पर तुम्हें समझती हूँ।'

दोनों निस्तब्ध से एक दूसरे को देखते रहे। लोई ने धीरे से हाथ अलग कर लिया। कबीर ने कहा : कहाँ जाती है लोई ?

'अब मैं तब ही आऊँगी कबीर ! जब तुम मुझे दिन दहाड़े हजार जुलाहों के बीच सामने से बाजे बजवा कर लाओगे। अब चटनी बंद।

तभी मां ने पुकारा : अरे आया नहीं बेटा....

'आया अम्मां....' कबीर ने कहा, और लोई पाँव दबाती हुई चली गई....चुपचाप....

होली आ गई थी। काशी की सड़कों पर आज धुंध सी मच रही थी। धूल के अंबार उठ रहे थे और भाँग और शराब के नशे में चूर, अबीर और गुलाल उड़ाते झुंड के झुंड लोग टोलियाँ बना कर गाते,ढोल बजाते,नाचते जा रहे थे। बच्चे रंग फेंकते। औरतें छतों पर बैठीं थी और घूंघट खींचे रंग डालती थीं, नीचे सड़कों पर मर्द नाचते थे। चारों ओर हुड़दंग मच रहा था।

नीमा सुबह से ही बैठी थी। उसने पुकारा : बेटा कबीर !

'क्या है अम्मा !' कबीर ने पास आकर कहा।

'बेटा ! तू नहीं गया कहीं ?' माँ ने कहा।

'कहाँ जाऊँ अम्माँ !' कबीर ने कहा : 'सब लोग तो भाँग पीकर झूम रहे हैं। मुझे नशा करना अच्छा नहीं लगता।'

बात तीर सी लगी।

कुछ देर बाद कबीर खिसक चला।

उदास सी छत की मुंडेर के पीछे लोई बैठी सीं रही थी।

कबीर स्तब्ध सा देखता रहा। फिर धीरे से कहा : लोई !

उसने मुड़कर देखा। कहा कुछ नहीं। फिर डोरे को मुँह में रखा और उसका छोर बंटने लगी।

कबीर ने फिर कहा : लोई !

'क्या है ?'

'तू क्या सोच रही है ?'

'कुछ नहीं।'

उसका मान आज साधारण नहीं था। कबीर उसके पास बैठ गया। वह खुद सोच में पड़ गया था। उसके माथे पर बल से पड़ गये थे। उसका मौन देख कर लोई को चिंता होने लगी। उसने उसकी ओर न देखकर कहा : क्या सोच रहे हो ?

'कुछ नहीं,' कबीर ने कहा ।

लोई मुस्कराई । कहा : 'तुम बड़े चालाक हो, मैं जानती हूँ ।'

'क्यों लोई ?' कबीर ने कहा : 'तूने मुझे सीधे जवाब दिया था ?'

लोई की मुस्कान फिर ढह गई । कबीर ने देखा । हाथ पकड़ कर कहा : तुझे कुछ दुख है लोई ?

'दुख !' लोई ने कहा : 'क्यों होने लगा मुझे ?'

और उसने तीक्ष्ण दृष्टि से देखकर कहा : तू समझता है मैं कुछ जानती नहीं । क्यों ?

उस 'तू' में विक्षोभ था, क्रोध था, परन्तु हृदय के स्वत्वानुभव की अनुभूति थी । 'तू' सुनकर कबीर चौंका नहीं । भरे-भरे नेत्रों से देखता रहा । फिर पूछा : क्या जानती है ?

'मैं पूछती हूँ तू किस लिये कमाता है ?'

'पेट के लिये लोई ।'

'किसके ?'

'अपने और मां के ।'

'बस ?'

'और तो अभी घर में कोई नहीं ।'

'और जो आयेगा उसके लिये तेरे पास क्या है ?'

'मेरा हिया ।'

लोई ने सिर हिला कर कहा : 'अरे मैं पहले ही तेरी बातें जानती हूँ । यों नहीं बहलूँगी । कुछ मेरा बाप भी तो कहेगा ! बिरादरी क्या कहेगी ? तू कल अपने पैसे उस लंगड़े और अंधे सूरा को दे आया था, परसों मैंने देखा था तूने चार कौड़ियां एक साधू को दे दी थीं । तू बड़ा दाता है न ! ला मेरे लिये क्या लाया है ?

'तेरे लिये ?' कबीर ने कहा—'मैं तेरे लिये इन सबसे अच्छी चीज लाया हूँ । देख ! यह है । बोलती मिट्टी ।'

'कौन ?'

'मैं हूँ, जो !'

लोई हतप्रभ नहीं हुई। उसने कहा : 'धिक है तुझे, जो बोल कर भी मिट्टी ही बना रहा, मानुस न हुआ।'

'लोई !!' कबीर के मुख से हठात् निकला। आज उसमें जैसे बिजली दौड़ गई। 'लोई !!!' उसने फिर कहा। मानो फिर उसका गला रुंध गया और कुछ कह नहीं सका।

लोई ने कहा : 'आज तू मुझसे होली खेलने आया है न ?'

'हाँ लोई ! पर मेरा मन इस सुख में रमता नहीं।'

'क्यों ?'

'यह सब मुझे चलता हुआ दिखाई देता है। देखता हूँ संसार में घोर अन्याय हो रहा है। यज्ञ करने वाले अन्न को जलाते हैं, जोगी जीवन बिताते हैं तो जगह-जगह घूमते फिरते हैं। ब्राह्मणों का अहंकार नीच जाति नीच जाति कहकर हमारा अपमान करता है। हम जुगी हैं तो क्या आदमी नहीं हैं लोई। मुसलमान रोज लोगों को बहकाते हैं. गरीब लोग हाहाकार कर रहे हैं। चारों तरफ मजबूरियाँ खड़ी हैं। मैं देखता हूँ तो एक सुलगन सी उठ खड़ी होती है। तुझे कोई चिंता नहीं होती ?'

'किसकी ?' लोई ने पूछा।

'यह जो दुनियाँ में इतनी बेचैनी फैली हुई है ?'

लोई मुस्कराई। कहा : 'मुझे उस सबकी बेचैनी नहीं होती, केवल एक बेचैनी होती है।

कबीर ने प्रश्न वाचक दृष्टि से देखा।

लोई ने कहा: 'केवल यही कि तू बेचैन रहता है। जुगी जुलाहे क्या और नहीं हैं जो तू इतना व्याकुल है। मैं पूछ सकती हूँ 'काजी जी क्यों सहर के अंदेसे से इतने दुबले हैं ?'

'तू स्त्री है,' कबीर ने कहा—'माया तेरे घट घट में है।'

लोई ने कहा : 'साधुओं ने तुझे बौरा दिया है कबीरे ! अगर स्त्री माया है तो पुरुष क्या है ? सब भटक रहे हैं। सिद्धों की सी अटपटी बानी न बोल न नाथों कापालिकों की तरह डराने की कोशिश कर। बंगाले कामरूप की

जादूगरनियों की बात सुनती आई हूँ। वह सब झूँठ होगा। लोग चाहते हैं कि कुछ कर दिखायें, पर राह नहीं मिलती। गरीब का क्या ? तू पागल है। ऐसी बात करके तू मेरा अपमान करता है, उसे तू जानता नहीं, खैर, मैं उसे पी जाऊँगी, पर मुझे यों न सता कि जाकर मरघट में बैठा ल्हासों को जलता देखा करे। अरे यहाँ इतने जीते हुए हाथ पाँव चलाते हैं, वे तुझे आश्चर्य से नहीं भरते ? तू मिट्टी को जलते देख के डरता है, मिट्टी को हंसते रोते देख कर तुझे अच्छा नहीं लगता ?'

'यह एक मेला है लोई ! लगता है, उठ जाता है। जो इसी में भूला रहता है, वह क्या जान सकता है ? इसी को सब कुछ समझ लेने से ही तो आगे चल कर इतना दुख होता है।'

'दुख !' लोई ने कहा—'तू जानता है दुख क्या है ?'

कबीर ने धीमे से कहा—'इस दुनियाँ की रीत उल्टी है लोई। यह रंगी को नारंगी और माल को खोया कहती है। जो चलती है उसे गाड़ी कहती है, बता इस सबको देख मैं अगर रूंआसा हो जाता हूँ तो क्या बुरा करता हूँ।'

'बात के फेर में पड़ा तू अपने को भूल रहा है।'

'नहीं लोई।' कबीर ने कहा : 'सुबह सुबह जब तू चक्की चलाती है तब मेरा दिल काँप उठता है। दो पाटों के बीच में आकर कोई नहीं बचता।'

'जगत का नाता तोड़ कर ही क्या चैन मिल जाता है कबीर ? माना कि मैं माया हूँ, पर मुझे किसने बनाया ?'

'भगवान ने !'

'और तुझे किसने बनाया ?'

'उसी ने।'

'तो मैं तू जब एक से हैं, तो मुझसे अभिमान करने का हक रखता है ?'

'नहीं।'

'फिर मुझे क्यों जलाता है ?

लोई की आँखों में आँसू आ गये। उसने कहा : 'तू उदास रहता है। खोया खोया रहता है। आखिर क्यों ? सच तुझे मन में कभी कुछ कुछ सा नहीं होता ?'

'होता है लोई।'

'तो फिर तू दूर दूर क्यों रहता है कबीर ?'

कबीर ने लोई के आंसू पोंछ दिये। लोई गर्व से नीचे देखने लगी। कबीर ने कहा : 'अब भी तुझे दुख है ?'

'नहीं।' लोई ने कहा--'तू कहता है मैं माया हूँ। मुझे माया ही कह, पर जो माया भगवान ने बनाई है, वह क्या इसी लिये अच्छी नहीं है कि वह बाँधे रखती है, उसी भगवान की सौगात है। बावरे! मैं न होऊँ तो यह संसार की माया बढ़ेगी कैसे? कैसे सदा सदा, युग युग तक आदमी भगवान की चिंता करेगा, कैसे उसका नाम इस धरती पर गूँजा करेगा, कबीर!'

'क्या है लोई! तू मुझसे क्या क्या कह जाती है। मैं इतना सब सुन कर आता हूं। वह सब क्षण भर में तेरे सामने लरज सा जाता है। तू माया कहाँ है लोई? तुझे देखता हूँ तो मुझे बंधन नहीं लगता, सहारा सा मिलता है।'

मैं नहीं समझती कि यह क्या है। यही तो वह लगन है जो मुझे तेरा बनाये रखती है। मैं तेरे पास रहूँ तो क्या तुझे पाप लग जायेगा ?'

'नहीं लोई। कभी नहीं। तू इतनी पवित्र है।'

लोई शर्मा गई। कहा : तू है संन्यासी ही। यह न भूल कि मैं तेरी कौन हूँ। हूँ कुछ ?'

कबीर उसे मुस्कराता हुआ भरी भरी आँखों से रहस्य भरी मुस्कान लिये देखता रहा। देखता रहा। लोई ने माथे पर घूंघट खींच कर मुस्करा कर कहा : 'सच कह। फिर तो मेरा खून नहीं जलायेगा ?'

'नहीं।' कबीर ने कहा।

'तो जा सबके संग होली खेल। मैंने तेरे लिये गुंजिया छिपाकर रखी हैं तू रंग में भींग कर आ, मैं तुझे अपने हाथ से खिलाऊंगी।'

'अब तो मैं रंग गया लोई।'

'कैसे ?'

'तेरे रंग में।'

'यही नहीं चाहती मैं।' लोई ने कहा—'यही मुझे डराता है। मैं दुनिया में सब कुछ नहीं हूँ कबीर। जैसे तेरे लिये बहुत कुछ है, वैसे ही उस सब में

मैं भी हूं। ये जो घर छोड़ कर भागते हैं, वे एक आँख से दुनिया को देखते हैं। अगर वे मन का तोल बराबर रखें तो लोगों का लाभ हो, नहीं तो हाँ और ना के पलड़े हमेशा होड़ करते रहते हैं। एक तरफ मरघट है, योग है, त्याग है, वन है, संन्यास है, दूसरी तरफ दुनिया है, लोगों का लाभ है, मदद है, पाप का पर्दाफाश करना है, दुख उठा कर भागना नहीं, यहीं रह कर सचाई के लिए लड़ना है। मैं अकेली उस सबको नहीं झेल सकूंगी। दो पांवों पर बोझ संभाल, एक पर न चल। गिर जायेगा। मुझे चाहते हुए तू दुनिया को न भूल, उससे घिन न कर, मुझे अंधा होकर प्यार न कर। मैं तो तेरी साथिन हूँ। जो तेरे लिये अच्छा है, सो मेरे लिये अच्छा है। तू कमा के गेहूँ चना जौ ला। मैं पीस के रोटी करूँगी। तू खा और मुझे खिला। अपना काम तू कर, अपना काम मैं करूँगी। मैं ताना डालूंगी, तू बाना डाल। तू मेरे पास आये तो आंख खोल कर आ। ऐसा न कर कि तुझे यह लगे कि तू सुपने में मिल रहा है! तू दूर चला जाता है, तब भी मुझे पास ही लगता है। आखों का अन्तर भले ही पड़ जाये, पर प्राण तेरे ही पास रहते हैं।'

लोई ने कबीर का हाथ पकड़ लिया और कहा : 'मैं समझती नहीं, गलत तो नहीं कहती ?'

कबीर चौंक उठा। बोला : 'जो तू कहती है वह मुझे अच्छा लगता है।

'यह में नहीं चाहती। तू अच्छा लगता है, तो सुनता है, पहले से मन में बना लेता है, तो अच्छा लगता है, और अगर पहले से मन में बना लेगा कि अच्छा नहीं लगेगा, तो उस दिन तुझे मेरी बात भी अच्छी न लगेगी। मैं यह नहीं चाहती। मैं कहूँ तो सुन। फिर तू कह, मैं सुनूं। जो तुझे ठीक लगे उसे तू बता मुझे ठीक न लगे वह मैं कहूँ। हम तुम अलग अलग नही कबीर, हम तुम संगी साथी हैं।'

और कबीर ने वह एक नवीन मार्ग देखा। वह एक समन्वय था, जो किसी प्रकार की भी दासता को अस्वीकृत करता था। वह उत्तरदायित्व को समझ करके झेलना था, जहाँ व्यक्ति की पूर्णता थी, किंतु अपने को विनष्ट करने वाली अंध पराजय नहीं थी। उसने कहा 'लोई!'

'क्या है ?'

'सब रसायन मैं किया
प्रेम समान न कोय ।
रति एक तन में संचरे
सब तन कंचन होय ।
जोई मिलै सो प्रीति में
और मिलै सब कोय
मन सो मनसा ना मिलै
देह मिलैं का होय ।

लोई के नेत्रों में आनन्द के दीपक जग उठे मानों पुतलियों के अंधकार में जीवन्त आलोक सुलग उठा, जैसे तूफानी लहरों के बीच किसी दीपस्तंभ पर से किरणें हवा को काटती अंधकार को फाड़े दे रही थीं । कबीर ने फिर कहा—

जल में बसे कमोदिनी
चंदा बसै अकास
जो है जाको भावता
सो ताही के पास ।
नैनों की करि कोठरी
पुतली पँलग बिछाय
पलकों की चिक डारि कै
पिय को लिया रिझाय ।

लोई ने आनन्द से नेत्र मूंद लिये । कबीर ने उसके बालों पर हाथ फेरते हुए कहा—

अगिनि आँच सहना सुगम
सुगम खड़ग की धार
नेह निभावन एक रन
महा कठिन ब्यौहार ।
जा घट प्रेम न संचरे

सो घट जान मसान,
जैसे खाल लुहार की
साँस लेत बिनु प्रान ।

लोई ने उसके वक्ष पर सिर धर दिया और विभोर हो गई ।

कबीर देखता रहा ।

उसने कहा : लोई ।

वह चौंक उठी । उसने आँखे खोलीं । उन नयनों में कितना जीवन था ।

कबीर को लगा जैसे अमृत का समुद्र लहरा रहा था । मन ने कहा । कौन कहता है स्त्री माया है, पाप है । वह जननी है, वह आद्या सृष्टि है । वही पूर्ण है । पुरुष उसका अंश है । स्वयं अनन्त भगवान भी स्त्री हीन नहीं है । इसे छोड़कर बन जाने में क्या लाभ है ! वे जो भटक रहे हैं उन्हें यह केवल कामिनी ही दिखाई देती है । वह पुरुष की विकृत वासना ही है जो इसे देख कर केवल कामिनी देखता है ! वह इसकी आत्मा के पूर्णत्व को नहीं देखता ।

लोई ने कहा : 'मैं यहाँ नहीं रहूँगी ।'

'कहाँ जायेगी लोई ?' कबीर ने चौंककर पूछा ।

'तू मुझे ले चले । देख तेरी माँ भी बूढ़ी हो गई है ।'

कबीर क्षण भर सोचता रहा ।

'क्या सोचता है ! धन की चिंता करता है ? जैसे तू रहता है, मै रहूँगी । यहीं क्या फरक है । धन तो आता जाता है कबीर । मन का विश्वास मुझे दे दे, फिर मुझे कुछ भी नहीं चाहिए ।

कबीर ने कहा : नहीं लोई ।

पो फाटी पगरा भया
जागे जीवा जून
सब काहू को देत है
चोंच समाता चून ।
मन के हारे हार है
मन के जीते जीत

कह कबीर पिऊ पाइए
मनही की परतीत

लोई आनन्द से उठ खड़ी हुई और फिर इससे पहले कि कबीर उठे उसने पास रखे मटके को उठा कर कबीर पर उंडेल दिया । कबीर भींग गया। कबीर ने उसको पकड़ लिया और कहा : अब तुझ पर कौन सा रंग डालूं !

लोई ने मुस्करा कर कहा : मैं तो उसी दिन से रंग गई हूँ जिस दिन तुझे देखा था.........

मरजीवे* को तो देखो....

जिंदगी पुकारती है : कमाल रुक कर देख !!
और मैं बहुत दिन बाद मुड़ कर देख रहा हूँ।
लेकिन जो तब भी था, अब भी है, आगे भी रहेगा......
वह नये मानव का विद्रोह था !
स्वतन्त्रता...बुद्धि की पूर्ण स्वाधीनता केलिये मनुष्य ने पुकार उठाई थी...

पिता कहा करते थे—

काल करै सो आज कर
आज करै सो अब्ब
पल में परलै होइगी
बहुरि करैगा कब्ब ।

---

* मृत्यंजय

कर्त्तव्य के लिये वे देरी नहीं सह सकते थे ।

और सचमुच मैं कुछ न कर सका । प्रलय हो ही गई ।

कबीर को चेलों ने डुबा ही दिया, क्योंकि मठ बना, धन आया, और मोह ने सत्य को ढंक लिया ।

पर यदि मैं कुछ नहीं कर सकता तो क्या यह भी न कहूँ कि मेरा बाप वह ही नहीं था, जिसे शून्य शून्य कहकर सब बखानते हैं । वे उसे महान् कह देते हैं पर उसको उन बातों को नहीं कहते, जो उसका अपना चिंतन था । मैंने तो उपसंहार से आरम्भ की झलक देखी, पर मैं वह फिर कहूँगा, क्योंकि मेरा बाप दीन जुलाहा था । उसने पहले ब्राह्मण को पूज्य समझा था । फिर उसका विकास हुआ । वह जोगियों से प्रभावित हुआ । फिर जब वह जागा तो उसके भीतर की शक्ति जागी । उसने इन सब बंधनों को तोड़ दिया ।

वह संस्कृति का पुनर्जागरण था, दीन जनता का पहला स्पष्ट सस्वर निनाद था । पर उसे लोगों ने दबा दिया है ।

क्या वह दब सकेगा ।

वह तो मेहनत की कमाई पर पलने वाला आदमी था···दलित, जात भी, कुल भी, धनहीन, परन्तु अपराजित····

मैं बताऊँगा कि वह पग पग पर बढ़ा और फिर दीपक में से दीपक जलाता चला गया ।

फिर ब्राह्मण, जोगी, तुरुक, सबने अंधेरे के पर्दे लटका दिये । और कबीर के चेलों ने उनकी नकल की, कबीर के विद्रोह को उन्होंने उसके प्रारम्भिक जीवन के शून्यनाद से ढंक दिया, जब वह जोगियों के प्रभाव में था····

मैं तो वह दिखाऊँगा जो लोग आज भूल चले हैं ।

पिता दूसरों की व्यर्थ वितंडा की शक्ति से दुखी हो जाते थे । उन्होंने एक दिन व्यथित होकर कहा था—

अपनी कह मेरी सुनै
सुनि मिलि एकै होय
मेरे देखत जग गया
ऐसा मिला न कोय ।

देस देस हम बागिया
ग्राम ग्राम की खोरि
ऐसा जियरा ना मिला
जो ले फटकि पछोरि।
भक्ति भक्ति सब कोई कहै
भक्ति न आई काज
जहँ को किया भरोसवा
तहँते आई गाज
सब काहू का लीजिये
साँचा शब्द निहार॥
पच्छपात ना कीजिये
कहै कबीर विचार।

मैंने कहा था : दादा ! फिर धर्म क्या परम्परा से पिता से पुत्र को नहीं मिलेगा ?

कबीर ने कहा था : नहीं बेटा ! धर्म कोई रूढ़ि तो नहीं। मनुष्य का कल्याण ही धर्म है। अपना ही विश्वास अपना ही बंधन बन जाये यह क्या ठीक है ?

'नहीं है दादा !' मैंने कहा था। 'पर संसार में सब तो सोचते नहीं।'

'इसीलिये कुछ लोग सबको मूरख बनाते हैं।'

वे सोचने लगे थे। फिर कहा था : वे मन मिलाने के लिए बात नहीं कहते। वे संदेह बढ़ाने की बहस करते हैं ताकि उनके चेलों पर उनका प्रभाव बढ़ता रहे।

'तुम्हें दुख होता है ?'

'होता है बेटा।'

'क्यों ?'

'क्योंकि मैं उन्हें सोचने के लिए कहता हूँ। और वे लीक पर ही गाड़ी चलाये जाते हैं।

'इससे उन्हें फायदा क्या है ?'

'वे कीचड़ में फँसना नहीं चाहते। सोचते हैं जो राह है वही काफी है।'

'पर वे जिन रास्तों पर चलते हैं, वे कीचड़ में ही तो बने हैं?' मैंने पूछा था।

पिता प्रसन्न हुए थे।

'कहा था : कमाल? तू समझता है?

'मैं नहीं जानता।' मैंने कहा था। 'परन्तु तुम जो कहते हो, वह सब तुम्हें कहाँ मिला? साधुओं के पास बैठने से दादा? तुम तो पढ़ना लिखना भी नहीं जानते?

'पिता ने मुस्करा कर गाया था :

मैं मरजीवा समुद्र का
डुबकी मारी एक
मूंठी लाया ज्ञान की
जामें वस्तु अनेक।
डुबकी मारी समुद्र में
निकसा जाय अकास
गगन मंडल में घर किया
हीरा पाया दास।
जा मरने से जग डरें
मेरे मन आनन्द
कब मरिहौं कब पाइहौं
पूरन परमानन्द।

उन्होंने कहा था : जो मौत से नहीं डरते, वे जान लेते हैं।

'क्या दादा?'

'यह संसार धोखे की आड़ में चलता है।'

'तो वे कहते क्यों नहीं?'

'अपने स्वार्थों से डरते हैं।'

'क्या हैं वे?'

'धन के बंधन।'

'उन्हें तोड़ना कठिन ही क्या है ?'

'बेटा ! पेट नहीं बोलने देता। वह ही मौत से डराता है। मौत क्या है ? बुद्धि को बेच देना।'

मैंने देखा था वे चिंतित लग रहे थे।

मैंने कहा था : दादा !

'क्या है ?' वे चौंक उठे थे।

'मौत में आनन्द है ?'

'उसमें है जो निर्भयता का फल है वही माया को काटना है ! आदमी की माया उसका संसार है।'

'तो यह संसार छोड़ना चाहिये ?'

'नहीं, इस दुनिया को कौन छोड़ता है ? मैंने छोड़ी है क्या ?'

'नहीं।'

'बेटा ! माया का अर्थ है मनुष्य के वे बंधन जो उसे मनुष्य होने से रोकते हैं।'

'मैं नहीं समझा दादा।'

'बेटा !' पिता ने साँस खींचकर कहा था:'भगवान क्या है बता सकता है?'

'वही तो सब है।' मैंने उत्तर दिया था।

'पिता ने कहा था :

भजूँ तो को है भजन को
तजूँ तो को है आन
भजन तजन के मध्य में
सो कबीर मन मान।

मैंने अनबूझ बनकर देखा था। मुझे विश्वास नहीं हुआ था। पूछा था: तो क्या भजन व्यर्थ है ? फिर तुम नाम महिमा क्यों लेते हो ?

पिता मुस्कराते थे। कहा था: 'भगवान नहीं छोड़ा जा सकता है न ? तो फिर भजन करने के लिए है ही कौन ? किसको छोड़कर किसका भजन करूँ बेटा। खाली नाम का क्या लेना और त्याग का मोह भी किस लिये ? भजन करने के लिए कोई दिखता है तुझे ?'

'नहीं दादा ।'

'तो जो दिन रात भजन करते हैं वे क्या पाते हैं !'

'लेकिन दादा ! तुम तो नाम की दुहाई देते हो ।'

'अब भी देता हूँ ।'

'क्यों ?'

'यह पूछ किनको देता हूँ ?'

मैंने अविश्वस्त दृष्टि से देखा था ?

पिता ने कहा था:'उन्हें नाम याद दिलाता हूँ जो नाम भी भूल जाते हैं।'

'पर किसका नाम पिता ?'

'उस सृष्टि की शक्ति का, जो इस सब संसार और ब्रह्माण्ड में फैली हुई है । उसमें सब शक्ति है, सत्य है, क्या छोड़ा जा सकता है, क्या है जो भजन के ही योग्य है । बेटा ! माया में तो मनुष्य ने स्वयं अपने को बाँध लिया है।

'तो क्या माया भगवान में नहीं है ?'

'है बेटा । यह सत्य भी उसी का है, यह माया इस सत्य को ढँकती है । अतः यह भी उसी की है । पर यह माया जड़ नहीं हैं कि मनुष्य इससे निकल न सके । वह जान बूझ कर उसमें फँसता है ।'

'तो माया क्या है । दादा ?'

'धन, रूप के बंधन । झूंठ, दगा, फरेब, अहंकार । वितण्डा, धर्म का ढोंग, यह सब माया है ।'

मैंने सोचा था, पिता पुरानी राख को फूंक रहे थे, मुझे एक नयी आग सी भभकती हुई दिखाई दे रही थी । वह माया अब अवास्तविक छलना न रह कर वास्तविक बंधन लगने लगी थी ।

माँ रोटी ले आई थी । चार मुझे दी थीं, तीन पिता को । दो स्वयं लेकर लोटा पानी का भर कर पास ले आई थी । और हम खाने बैठ गये थे ।

पिता ने कहा था : लोई ! तू ही पालती है । तू ही खिलाती है । सांई एक दया कर । रोटी दिये जा ।

रूखा सूखा खाय के
ठण्डा पानी पीव

देखि विरानी चूपड़ी
मत ललचावै जीव।
कबिरा साँई मुज्झ को
रूखी रोटी देय
चुपड़ी माँगत मैं डरूँ
रूखी छीनि न लेय।
आधी अरु रूखी भली
सारी सों संताप
जो चाहैगा चूपड़ी
बहुत करगा पाप।

लोई ने कहा : गरीब को रूखी ही भली। झूंठ तो नहीं बोलनी पड़ती इसके लिये?

'सच कहती है', पिता ने कहा—'लोई! चुपड़ी रोटी ईमान और मेहनत से नहीं मिलती। उसके लिये पाप करना पड़ता है। दूसरों को लूटना पड़ता है। गला काटना पड़ता है। राजा किसान को लूटता है, महंत शिष्यों को बहकाता है, जोगी भीख के लिए करतब दिखाता डराता धमकाता है।'

मैंने देखा वे दोनों प्रसन्न थे। गले में रोटी अटक गई थी।

माँ ने कहा : पानी तो पी।

'माँ, गले में अटकी है।' मैंने कहा था।

माँ की आँखों में स्नेह छलक आया था। कह उठी थी : 'बेटा! जुलाहे का बेटा है! जुलाहा बन। सुना नहीं दादा ने क्या कहा?'

'क्यों नहीं सुना माँ।'

'पर तुझे अच्छा नहीं लगा न?'

मैं जबाब नहीं दे सका।

पिता ने कहा : बेटा।

मैंने आँखें उठाईं।

'रोटी अटकती है?'

'हाँ दादा।'

'लेकिन इसको फिसलाने के लिए क्या करना होगा जानता है ?'

'तुम बताओ !'

'गाहक को ठगना होगा, तब ज्यादा कीमत मिलेगी ।'

मैंने कहा : 'नहीं दादा । यह कैसे कर सकेंगे हम ! राजा के द्वार जाकर चोबदारों की जूती कौन उठायेगा !'

लोई माँ ने कहा : जो घी की चुपड़ी खायेगा ।

हम तीनों हंस दिये ।

पिता गद्‌गद् हो गये । वे बोल उठे—

हेरत हेरत हे सखी
हेरत गया हेराय ।
बुंद समानी समुंद में
सो कित हेरी जाय ।
आदि होत सब आप में
सकल होत ता मांहि ।
ज्यों तरवर के बीच में
डार पात फल छाँहि ।
कबिरा मैं तो तब डरौं
जो मुझ ही में होय ।
मीच बुढ़ापा आपदा
सब काहू में सोय ।
जूआ चोरी मुखबिरी
ब्याज घूस परनारि ।
जो चाहै दीदार को
ऐसी वस्तु निबारि ।

'मीच और बुढ़ापा क्यों याद आ रहा है !' लोई ने पूछा ।'

कबीर ने कहा : कमाल की बात सोचते हुए मुझे याद आया । लोग कहते हैं, बुढ़ापा और मौत दबा लेगी तो कुछ नहीं होगा, इसी से जो करना

है करलो। मैंने सोचा था सच कहता है यह आदमी। पर क्या इसीलिए बुराई करना ठीक है। उससे दूसरों का गला नहीं कटेगा क्या?

माँ ने कहा: अरे कौन नहीं मरता। जोगी क्या अमर ही हो जाते हैं। ऐसा होता तो दुनियाँ खाली न हो जाती। और सदा जिये जाने की हविस ही क्यों हो? पैदा होने वाले मरते रहें यही सबसे ठीक है।

पिता ने कहा: मैंने कहा था भगवान हमारे दिन रात के कामों में ही है बाहर नहीं है।

'यह तुमने मुखबिरी क्यों कहा?' मां ने पूछा।

'लोई! गरीब के खिलाफ़ लोग धनी को बताते हैं और चन्द टुकड़ों के लिये गरीब का गला कटवाते हैं। इस तरह के लोग कभी भगवान को पा सकते हैं?'

माँ ने कहा था: कौन कहता है? छि:! वे तो घोर पापी हैं।

'मैंने कहा था लोई', दादा ने कहा था। 'आज साधुओं में बहस चल रही थी।'

'मुझे वही सुनाओ।' माँ ने कहा था।

पिता ने सोचते हुए दुहराया था:

ब्रह्महि ते जग ऊपजा
कहत सयाने लोग।
ताहि ब्रह्म के त्यागि बिनु
जगत न त्यागन जोग।
ब्रह्म जगत का बीज है
जो नहिं ताको त्याग।
जगत ब्रह्म में लीन है
कहहु कौन वैराग।
नेत नेत जेहि बेद कहि
जहाँ न मन ठहराय।
मन बानी की गम नहीं

ब्रह्म कहा किन ताय।
बिन देखे वह देस की
बात कहै सो कूर
आपै खारी खात हौ
बेचत फिरत कपूर।

'फिर?' माँ ने पूछा।

'वे बिगड़ गये।'

माँ हंसी। कहा 'धक्का लगेगा तो कौन नहीं हिलेगा कंत। तुमने तो वेद को ही टक्कर मार दी।'

'किसी ने देखा है वह ब्रह्म?' पिता ने कहा। 'किसी ने नहीं। फिर सब कुछ उसी के लिये करने से तो काम नहीं चलेगा लोई। यह संसार तो उसी का रूप है। इसका अच्छे रूप में चलना ही तो ब्रह्म की उपासना है।'

माँ प्रसन्न दिखाई दी। बोली: 'वे अब तो तुम्हें मोही नहीं कहते?'

उसका व्यंग्य पिता समझ गये। कहा: तू भूली नहीं है। बलख तक गया था लोई यह कबीर। क्या क्या कष्ट नहीं उठाये। एक बार भीख न मिली, तो साथियों साधुओं ने ढोंग रचा। मैं तो शर्म से गढ़ गढ़ गया। मैंने सोचा। यह माया नहीं तो क्या है? स्त्री को तो माया कहें और आप दूसरे को धोखा देकर पेट पालें। यह क्या पाप नहीं था!'

खाना खतम हो चुका था। माँ लोटा उठाकर भीतर कोठे में चली गई थी। मैं औंघने लगा था।

पिता गा रहे थे:

मोको कहाँ ढूँढता बंदे
मैं तो तेरे पास में,

ना मैं बकरी, ना मैं भेड़ी
ना मैं छुरी गंडास में
नहीं खाल में नहीं पोंछ में
ना हड्डी ना माँस में
ना मैं देवल ना मैं मसजिद
ना काबे कैलास में
ना तो कौनौं क्रिया करम में
नहीं जोग बैराग में
खोजी होय तो तुरतै मिलि हौं
पल भर की तालास में
मैं तो रहौं सहर के बाहर
मेरे पुरी मवास में
कहैं कबीर सुनो भई साधो
सब साँसों की साँस में।

'लोई !' पिता ने पुकारा था।

'क्या है कंत !' लोई आ गई थी।

'वह तो हर जगह है लोई !'

'तुम मुझसे बार बार यह क्यों कहते हो ?'

'मैं सचाई को दुहराता हूं।'

'लेकिन मुझे लाज आती है।'

'क्यों !'

'कहीं लोग सुनेंगे तो कहेंगे कि लोई का कबीर पर बंधन है। तभी कबीर वैराग्य छोड़ बैठा है।'

कबीर ने कहा : 'वह होता तो और बात थी लोई। पर यह ही जीवन का बड़ा दर्शन है। पूर्ण है। वह तो पुरुष का दर्शन था, जो अपने को अधूरा मान कर चलता था।'

'सच कहते हो ?'

'तुझे विश्वास नहीं होता !'

'मुझे विश्वास नहीं क्यों होगा कंत ! मैं जानती हूँ तुम कभी झूँठ से समझौता नहीं करते । मैं मानती हूँ कि नारी माया है, पर कब ? उनके लिए जो भोग को ही जीवन का सब कुछ मान लेते हैं । वे तो असल में कभी प्रेम की पवित्रता को नहीं जान पाते । मैं अपढ़ हूँ, तुम्हारे साथ रह कर क्या-क्या नहीं सीख गई हूँ कंत ! तुमने ही तो कहा था—

दूर वे दूर वे दूर वे दूर मति
दूर की बात तोहि बहुत भावै
अहै हज्जूर हाजीर साहवधनी
दूसरा कौन कहु काहि गावै ।
छोड़ दे कल्पना दूर का धावना
राज तजि खाक मुख काहि लावै
पेड़ के गहे ते डार पल्लव मिले
डार के गहे नहिं पेड़ पावै ।
डार औ पेड़ औ फूल फल प्रगट है
मिले जब गुरू, इतनो लखावें ।
सँपति सुख साहबी छोड़ जोगी भए
शून्य की आस बनखंड जावै ।
कहहिं कब्बीर बनखंड में क्या मिल
दिलहि को खोज दीदार पावै ।

तुमने नहीं कहा था ?'

'मैंने ही कहा था लोई । सारा देश एक पागलपन में डूब गया है । स्त्री और संतान भी अपना महत्व रखते हैं । जो अपने ही माध्यम से सब को सोचते हैं, मैं उन्हें ही माया में फँसा हुआ देखकर कहता हूँ कि साथ कोई कुछ नहीं ले जाता ! सब यहीं रह जाता है । पर जो आदमी अपना पेट पालता है उसे क्या बीबी बच्चों का पेट पालना नहीं चाहिए ? मैं समझ गया हूँ । साधू कहते थे कि इस संसार के धंधे में आदमी पेट का धंधा ही याद रखता है और परमात्मा को भूल जाता है । पेट के धंधे के स्वार्थ में वह अंधा

होकर पाप भी करता है, अपने अपराधों में अपने आप जकड़ जाता है। मैं मानता हूँ यह सत्य है, क्योंकि आदमी का पेट मजबूर है, और आदमी पेट के लिए मजबूर है। पर आदमी की मेहनत मजबूर नहीं है। लोभ और तृष्णा को रोक कर आदमी ईमान की रोटी खुद कमा कर खाये। भगवान का भजन करने वाला प्राणी, अपने पेट के लिए दूसरों के सामने हाथ क्यों फैलाए। देखती हो। भीड़ की भीड़, यह साधुता के नाम पर जो भिखमंगों की जमात चलती है, वह क्या दूसरों की मेहनत से कमाये माल को हराम में नहीं खाती! उस अन्न का फल गृहस्थ भोगते हैं, और साधू उसे खाकर भगवान को पाते हैं। यह कैसे हो सकता है। लोई! शून्य की आशा में वनखण्ड जाने वाले भटके हुए लोग हैं करनी का फल तो मन में है। उसके लिये तो कहीं जाना भी नहीं पड़ता लोई। सोचती हो मैं क्या कह रहा हूँ। यही लोगों को नहीं भाता, पर क्या करूँ—

अवधू भूले को घर लावै
सो जन हमको भावै
घर में जोग भोग घर ही में
घर तजि बन नहिं जावै।
अनप्रापत+ वस्तु को कहा तजे
प्रापत को तजै सो त्यागी है।
सुअसील तुरंग कहा फेरे
अफतर फेरे सो बागी है।
जगभव का गावना क्या गावै
अनुभव गावै सो रागी है।
वन गेह की वासना नास करे
कब्बीर सोई बैरागी है।

वन को मुक्ति और गेह को बंधन क्यों समझता है यह मनुष्य है!'

पिता की बात सुनकर मुझे लगा पिता कुछ ऐसा कह रहे थे जो अजीब था। तो क्या धर्म के नाम पर मुफ्त खाने वाले अधर्म कर रहे थे!

+ अप्राप्त

वही विचार आज तक याद आता है तो एक स्फूर्ति सी जग उठती है। धर्म को पिता धरती पर ला रहे थे। वह कह रहे थे कि धर्म के नाम पर अनाचार मत फैलाओ। संसार में प्रेम और ईमानदारी से रहना ही धर्म है।

मैंने तब नहीं समझा था कि इस बात में कितनी गहराई थी। माँ अवश्य प्रसन्नता के परे दिखाई देती थी। जैसे वह जो सुनने की आशा भी रख सकती थी। वह सब उसने सुन लिया था। उसने जीवन का नया सत्य सुना था। वह सब जो मन में खटकता था, पर स्पष्ट नहीं होता था, पिता ने उसे तर्क के साथ स्वरूप दिया था और वह बात एक सशक्त चेतना बन कर हमारे झोंपड़े में गूँजने लगी थी ... वह गूँज आज तक उसी रूप में कानों में बाकी रह गई, क्योंकि जब वह हटती है, तभी मुझे सूना सूना सा लगने लगता है, लगता है जैसे छीना झपटी हो रही है। पिता ने आधार को पकड़ा था, ढोंग के कारण को पकड़ा था। ढोंग श्रद्धा पैदा करवाने के लिए था, श्रद्धा चमत्कारों पर पलती थी। चमत्कार ही ढोंग था, जो रोटी सुरक्षित करने के लिए किया जाता था....

पिता कहते थे—

सिहों के लँहड़े नहीं
हंसों की नहिं पांत
लालों की नहिं बोरियाँ
साधु न चलैं जमात।
सब बन तौ चंदन नहीं
सूरा का दल नाहिं
सब समुद्र मोती नहीं
यों साधू जग मांहि
साध कहावन कठिन है
लंबा पेड़ खजूर
चढ़ै तो चाखै प्रेम रस
गिरै तो चकनाचूर
वृक्ष कबहुँ नहिं फल भखैं

नदी न संचैं नीर
परमारथ के कारने
साधुन धरा सरीर।

'तो क्या' मैंने पूछा था—'साधु परमारथ करने को हैं दादा ?'

'हाँ बेटा !'

'सो क्यों दादा। तो वे भजन कब करेंगे ?'

'बेटा।' पिता ने कहा—'वे भजन करें, अपना कल्याण कर लें तो जगत को लाभ ही क्या ? और वह भजन भी क्या जो नाम और गीत में ही रहे। दूसरों के दुखों को भी देखने से रोक दे।'

'तो क्या दादा ! वे दूसरों के दुख में रम कर, फिर माया में लिप्त नहीं हो जायेंगे ?'

'माया तो अपना बंधन है बेटा। दूसरे की परेशानी दूर करने को हाथ बँटाना तो माया नहीं है, माया को काटना है।'

पिता ने सोच कर कहा : मिलने की क्या बात बेटा। वे ही तो सब जगह हैं।

'फिर उन्हें ढूँढ़ते क्यों हैं ?'

'जो स्वार्थ में बंध जाते हैं, वे नहीं देख पाते, वे ही मूर्खता के कारण उसे ढूँढ़ते हैं, वर्ना वह तो सब जगह है। वह ही पुण्यस्वरूप आलोक है। वह ईश्वर ही सब में है, उस ईश्वर को न पाने का कारण है कि अहंकार और मद में मनुष्य अपने संसार के व्यवहार को बिगाड़ लेता है, दूसरों को सताता है, दबाता है, उससे भगवान दूर हो जाता है, कहो कि भगवान से अपने आपको वे दूर कर लेते हैं, क्योंकि प्रेम और समता को मिटा कर अहं और भेद को उठाते हैं और वे दोनों तभी उठते हैं जब वे सचाई और प्रेम को, स्वतन्त्रता को दबा चुकते हैं।'

पिता ने कहा था : बेटा ! यह संसार किधर जा रहा है। साधु के नाम पर ठगई हो रही है। चारों तरफ घर छोड़ कर हाथ पर हाथ धर कर खाने का यह तरीका लोगों ने खूब निकाल लिया है।

और पिता ने अपने आप विक्षोभ भरे स्वर से गाया था। मानों अपने

आपको सुना रहे थे···

साधू भया तो क्या भया
माला पहिरी चार ।
बाहर भेस बनाइया
भीतर भरी भँगार ।
माला तिलक लगाइकै
भक्ति न आई हाथ ।
दाढ़ी मूँछ मुड़ाय कै
चले दुनी के साथ ।
दाढ़ी मूँछ मुंड़ाइ कै
हूआ घोटमघोट ।
मन को क्यों नहिं मूँड़िये
जामें भरिया खोट ।
केसन कहा बिगारिया
जो मूँड़ौ सौ बार ।
मन को क्यों नहिं मूड़िये
जामें बिषैं बिकार ।
वाँवी कूटें बावरे
साँप न मारा जाय ।
मूरख बांबी ना डसैं
सर्प सबन को खाय ।

माँ हँसी थी ।
'क्यों हंसती है लोई ?' पिता ने पूछा था ।
'हंसूंगी नहीं । तुम बाहर न सुनाना इसे ।'
'क्यों ?'

'वे चिढ़ेंगे।'

'चिढ़ लेने दे। मैं क्या सच्चाई कहने से डर जाऊंगा।

'डरने को नहीं कहती। पर देखते हो। कमाल को भी देखा है।'

'देख लोई,' कबीर ने कहा : 'पाप के अनेक नाम हैं। अपनी निर्बलता को छिपाने के लिए आदमी बहाने ढूंढ़ता है। बहू बच्चे अगर उसकी आड़ बनते हैं तो वे ही माया के बंधन हैं। क्या यह जरूरी है कि मैं तुम दोनों के कारण डर डर कर जिंदगी काटूं?'

माँ ने कहा था : 'डरने को तो कमाल भी नहीं डरता कंत! क्यों रे मैं ठीक कहती हूं?'

मैंने रटा हुआ पद बड़े ऊंचे सुर से गाया था :

गुरू मिला न सिष मिला
लालन खेला दाँव।
दोऊ बूढ़े धार में
चढ़ि पाथर की नाँव।
जानंता बूझा नहीं
बूझि किया नहिं गौन।
अंधे को अंधा मिला
राह बतावै कौन।
बंधे को बंधा मिलै
छूटैं कौन उपाय।
कर सेवा निरबंध की
पल में लेत छुड़ाय।
बात बनाई जग ठगा
मन परमोधा नाहिं।
कह कबीर मन लै गया
लख चौरासी माँहि।

पिता ने सुना तो आनंद हुआ था।

बोले : तुझे किसने सिखाया है।

'माँ ने !'

'तू खुद उसे सिखाती है सो ?'

'क्यों न सिखाऊँगी ! जो पसंद आयेगा जरूर सिखाऊँगी। बेटा है तो क्या बिगाड़ने को है ! तुम ता कबीर ही हो। मेरे बेटे को कमाल होना चाहिये न ?'

'सबको दो लोई, सबको दो, चल चल कर पहुँचाओ, रुको नहीं,' पिता ने कहा था।

लोई कह उठी थी : पर तुम ही ने तो कहा था····

नीर पियावत का फिरै
पर घर सायर बारि।
तृषावंत जो होइगा
पीबैगा झख मारि।

पिता मुस्करा दिये थे। कहा था : 'वह वारि भगवान है ? वह आप ही जागता है····'

'कब ?'

'जब स्वार्थ डूबता है, सत्य उठता है·······'

'स्वार्थ ! कभी क्या उसका भी अन्त हो सकता है ?' मैंने पूछा था।

'जब गुरु कृपा होती है कमाल, तब सब कुछ हो जाता है।' पिता ने स्पष्ट कहा था।

'गुरु ?' मैंने पूछा था – 'गुरु कौन सा है। दादा तुम्हारा ही कौन गुरु है ?'

'जो सिखाने योग्य है वह गुरु है,' पिता ने कहा और गाया—

गुरु सिकलीगर कीजिये
मनहिं मस्कला देय।
मल की मैल छुड़ाय कै
चित दरपन करि लेय।

माँ ने कहा : 'आज मेरे मन की कहते हो।'

'क्यों लोई ?' पिता ने दरयाफ्त किया।

'मुझसे पूछते हो ? तुम नहीं जानते ?'

'मैं समझा हूँ लोई। गुरु गद्दीवाला नहीं है, गुरु तो मेहनत करने वाला है।

गुरु धोबी सिष कापड़ा
साबुन सिरजन हार।
सुरत सिला पर धोइये
निकसै जोति अपार।

माँ ने मस्ती से कहा : 'कंत। मुझे नयी हिम्मत मिली।'

'तूने ही एक दिन सहारा दिया था लोई।'

माँ ने कहा : 'नहीं', कबीर खुद जागा था।'

पिता ने कहा : कच्ची मिट्टी का रूप जग उठा है—

गुरु कुम्हार सिष कुंभ है
गढ़ गढ़ काढ़ै खोट।
अन्तर हाथ सहार दै
बाहर बाहै चोट।

'मैंने नयी परिभाषाए सुनीं। वह बातें जब घर के बाहर मैंने सुनाईं तो जोगी बिगड़ उठे।

गुरु !!

गुरु !! और ऐसे संसारी !!

वे उसे रूपक के तौर पर भी नहीं मानते थे।

क्यों ?

क्योंकि सहज यानी और नाथ, सूफी और शाक्त सब गुरु को एक आडम्बर बना बैठे थे। ब्राह्मणों तक पर इसका प्रभाव था।

पिता की ललकारें पथों पर गूंजने लगीं। आबाल वृद्ध सुनते। उनमें विद्रोह सा जाग उठता। पिता के शब्द पुराने विश्वासों को झकझोर उठते।

नये भावों के सिंह अंधकारमयी दिमागी गुफाओं में भूखे से गरजने लगते और बाहर आकर रूढ़ियों के शिकार करने को व्याकुल हो उठते। एक बार पिता ने जोगियों के अखाड़े में जाकर ठट्ठा मचा दिया। वे गा उठे—

ऐसा जोग न देखा भाई।
भूला फिरै लिये गफिलाई।
महादेव का पंथ चलावै।
ऐसो बड़ो महंत कहावै।
हाट बाट में लावै नारी।
कच्चे सिद्धन माया प्यारी।
कब दत्त÷ मावासी×तोरी।
कब सुकदेव तोपची जोरी।
कब नारद बंदूक चलाया।
ब्यास देव कब बंब बजाया।
करहिं लड़ाई मति के मंदा।
ई हैं अतिथि कि तरकस बँदा।
भए विरक्त लोभ मन ठाना।
सोना पहिरि लजावैं बाना।
घोरा घोरी कीन्ह बटोरा।
गाँव पाय जस चले करोरा।

जोगी लड़ाई के लिये प्रजा को उकसा रहे थे। उन्होंने चमत्कार दिखाने की चेष्टा की। पिता ने उसे भी काट दिया। बोल उठे—

आसन उड़ए कौन बड़ाई।
जैसे काग चील्ह मँड़राई।
जैसी भिस्त तैसी हैं नारी।
राज पाट सब गिनैं उजारी।
जैसे नरक तस चंदन माना।

÷ दत्तात्रेय। × मस्जिद।

जस बाउर तस रहै सयाना।
लपसी लौंग गनैं एक सारा।
खांड़ैं परिहरि फांकैं छारा।

नारी के लिये बहिश्त का प्रयोग उन नारी विरोधियों में धधक उठा। उनके मार्ग को पिता ने विनाश का मार्ग कहा। उनको पिता ने बुद्धिहीन कह दिया।

काशी में बवंडर उठने के से आसार दिखाई देने लगे।

भंग घोटते, सुलफ़ा पीते जोगी और मुफ़्तखोरे साधू अपने चिमटे बजाने लगे। वे क्रुद्ध थे। पर कबीर फक्कड़ था, अक्खड़ था—निडर था, निर्द्वन्द्व···· भीड़ें उसे देखकर विह्वल हो जाती थीं।

सारी काशी उसकी बात सुनकर झूमती थी, परन्तु मुल्ला और पण्डित नहीं सुनते। उनके मुख पर एक घृणा थी। यह जुलाहा! नीच! धर्म और मजहब के विरुद्ध बोलता है। पिता ने भरी सड़क पर भीड़ में गाया :

ऐसो भरम बिगुरपन* भारी!
बेद किताब दीन औ दोजख
को पुरुषा को नारी।
माटी के घर साज बनाया
नादे बिंदु समाना×।
घन बिनसे+ क्या नाम धरहुगे
अहमक खोज भुलाना।
एकौं हाड़ त्वचा मलमूत्रा
रुधिर गुदा एक मुद्रा।
एक बिंदु÷ते सृष्टि रच्यो है
को ब्राह्मण को शुद्रा।

---

* असमञ्जस।

× शब्द ब्रह्म और विन्दु।

+ वीर्य्य विनष्ट होने पर।

÷ वीर्य्य।

रजगुण ब्रह्म तमोगुण शंकर
सतोगुणी हरि सोई ।
कहै कबीर राम रमि रहिमा
हिंदू तुरक न कोई ।

पथ पर लोगों में हलचल मच गई ।

पण्डित चिल्लाया : पापी है ।

मुल्ला चिल्लाया : काफ़िर ही नहीं, दोजख़ का रास्ता है ।

और जुलाहों में आवेश का झण्डा फहराने लगा ।

कबीर ने आदिनाद किया था ।

उसने गर्जन किया था कि इस देश में कोई हिंदू और कोई मुसलमान नहीं । उसने पुराने अहंकार और नए अहंकार, दोनों को समान रूप से खंडित किया था ।

उसने कहा था : मनुष्य मनुष्य है ।

सब मनुष्य समान हैं ।

उसने कहा था : यह देश अपना है । हम विदेशियों के रंग में रँगेंगे नहीं, क्योंकि वे इस्लाम के नाम पर भटके हुए हैं ।

उसने कहा था : यह देश कुलीन उच्च वर्णों की संस्कृति का ही नहीं है, जिसे ही सब कुछ मान लिया जाय, जिसके अन्याय और पाप को देशभक्ति और धर्म संस्कृति के नाम पर बचाया जाय । उसने तो एक नए मनुष्य के लिए नयी जमीन तैयार करने की कोशिश की थी । जहाँ विदेशी का अहंकार और अत्याचार न हो, जहाँ उच्चवर्णों का असाम्य और दंभ न हो । जहाँ मनुष्य के रूप में नीच माने जाने वाले उठें ।

उसने संस्कृति का नया रूप माँगा था । वह जागरण का स्वर था, जो वर्णों और संप्रदायों में से मनुष्य को मुक्त करना चाहता था । तभी उसने गाया था :—

राम के नाम ते पिंड ब्रह्मण्ड सब
राम का नाम सुनि भरम मानी
निरगुन निरंकार के पार परब्रह्म है

तासु को नाम रंकार जानी।
विष्णु पूजा करैं ध्यान शंकर धरैं
मनहिं सुविरंचि बहु विविध बानी।
कहैं कबीर कोउ पार पावै नहीं
राम को नाम है अकह कहानी।

उसने कहा था कि ब्रह्म तो अकह है। उसे कोई नहीं जानता।

अपनी संस्कृति के नाम पर जो उच्चवर्ण हम नीच वर्णों पर अत्याचार करते थे, वह सचमुच उच्चवर्णों की ही तो स्वार्थ साधिका थी। उस संस्कृति के उसी रूप की रक्षा से हमें क्या लाभ था!

और वह कबीर ही था जो उच्चवर्णों का विरोध करते समय यह नहीं भूला कि इस्लाम भी मुक्ति का रास्ता न था। वह वर्ण भेद नहीं मानता था, पर गरीब को वहाँ भी सुख न था। वह विदेशियों के सामने पराजित नहीं हुआ। उसने बताया कि इन दो के अतिरिक्त एक सत्य और था।

वह सत्य था जनता का!

मनुष्य का!

अपराजित मनुष्य का।

जो पिस रहा था, पर कबीर की फौलादी आवाज ने उच्चवर्णों की रूढ़ियों की दीवारों और विदेशियों की उठी हुई तलवारों को विभ्रांत कर दिया।

काशी के सिकलीगर, मनिहार, और निम्न जाति के लोग उठने लगे।

कबीर की पुकार जनता की रोटी के साथ बढ़ने लगी और फिर गज़ब हुआ। वे नीच जातियाँ जो इस्लाम के अधिकारों की चकमक में मुसलमान हो गईं थीं, उन्होंने अपनी पुरानी सत्ता को पहँचाना, उन्होंने स्वीकार किया वे बिक गई थीं, और फिर वे जातियाँ कबीर के झण्डे के नीचे आने लगीं। कबीर घर घर में नयी चेतना फैलाता रहा।

काशी उस समय भारत का हृदय थी। वहाँ सब धर्म अपने अपने मठ लिए बैठे थे।

केवल कबीर के पास कुछ नहीं था, केवल शब्द था, वह उसी शब्द को अपना ब्रह्म कहा करता था…

उनके उपहास बढ़ने लगे :

वेद किताब सुमृत नहिं संयम
नाहिं यमन परसाही।
बाँग निवाज नहीं तब कमला
रामौ नहीं खोदा× ही।
आदि अन्त सन मध्य न होते
आतस पवन न पानी !
लख चौरासी जीव जन्तु नहिं
साखी सब्द न बानी।
कहहिं कबीर सुनो हो अवधू
आगे करहु विचारा।
पूरन ब्रह्म कहाँ ते प्रगटे
किरतम+ किन उपचारा।
अविगति की गति क्या कहों
जाके गाँव न ठाँऊ।
गुणों बिहीना पेखना*
का कहि लीजे नाउँ।

उसने पुकारा था—
वेद स्मृति शाश्वत ज्ञान नहीं है।
नमाज भी अन्त नहीं है।
कबीर ने पूछा : इनके पहले क्या था ?
उसने पूछा : इनके आगे क्या है।

'तुम नहीं जानते', उसने कहा—'कोई नहीं जानता। फिर जब कोई नहीं जानता, तो उसका नाम क्यों धरते हो ? उसका नाम लेकर क्यों लड़ते हो ! वह तो तुम्हारी सीमाओं में आने वाला नहीं है ! तुमने किस संबल से उसका नाम धर दिया !

× खुदा। + कृत्रिम। * देखना।

मैंने कहा था, दादा ! तुम ब्रह्म को नहीं मानते ?'

पिता ने कहा था : 'बेटा ! मैं मानता हूँ पर सबको चलते देखता हूं इसी से मानता हूँ। पर वह निस्संदेह वह नहीं हैं जो यह लोग कहते हैं।'

'क्यों ?'

'क्योंकि इनकी परमात्मा की कल्पनाएँ इनके अपने स्वार्थों के साथ लगी हैं। इनका परमात्मा एक रूढ़ि है, यह लीक पीटते हैं, जानता है क्यों ?'

'क्यों भला ?'

'क्योंकि इनका परमात्मा ही इनके पेट भरने का साधन है।'

'तुम भी तो कहते हो वही परमात्मा सबका पेट भरता है ?'

पिता ने कहा था : 'ठीक है बेटा भरता है। पर क्या वह एक का भर कर दूसरे का पेट काटता है ?'

मैं अवाक् रह गया था। पिता ने काशी के भरे बाजार में घोषणा की थी–

संतौ आवै जाय सो माया !
है प्रतिपाल काल नहिं वाके
ना कहुँ गया न आया।
क्या मकसूद मच्छ कछ होना
शंखासुर न सँघारा।
अहै दयालु द्रोह नहिं बाके
कहहु कौन को मारा।
वे कर्त्ता न बराह कहावैं
धरणि धरैं नहिं भारा।
ई सब काम साहेव के नाहीं
झूठ गहै संसारा।
खंभ फारि जो बाहिर होई
ताहि पतिज सब कोई।
हिरनाकुस नख उदर बिदारे
सो नहिं कर्ता होई।
बावन रूप न बलि की जाँचैं

जो जाँचैं सो माया
बिना विवेक सकल जग जँहड़े*
माया जग भरमाया।
परशुराम छत्री नहिं मारा
ई छल माया कीन्हा
सत गुरु भक्ति भेद नहिं जानैं
जीव अमिथ्या दीन्हा।
सिरजनहार न ब्याही सीता
जल पखान नहिं बंधा
वे रघुनाथ एक कै सुमिरैं
जो सुमिरैं सो अंधा।
गोप ग्वाल गोकुल नहिं आए
करते+ कंस न मारा
मेहरबान है सबका साहब
नहि जीता नहिं हारा।
वे कर्त्ता नहिं बौध× कहावैं
नहीं असुर को मारा
ज्ञानहीन कर्त्ता सब भरमे
माया जग संहारा।

---

* जकड़ दिया+ कर्त्ता ×बुद्ध : कबीर के समय में बुद्ध को असुरों का नाशक कहते थे। नानक ने भी ऐसा ही कहा था।

तब तक बौद्ध समाप्त हो चुके थे। बुद्ध को भारत में ब्राह्मणों ने पूज्य मान लिया था। बुद्ध ने ईश्वर और वेद का विरोध किया था। इस बात को यों ढँका गया—भगवान ने बुद्ध को कर्मकाण्ड की हिंसा की अति रोकने को भेजा था। असुर वेद को नष्ट करना चाहते थे। बुद्ध ने कहा : वेद है ही नहीं ईश्वर है ही नहीं। इस प्रकार बुद्ध ने असुरों को भ्रम में डाल दिया और उनका संहार कर दिया।

वे कर्त्ता नहिं भए कलंकी
नहीं कलिगहिं मारा
ई छल बल सब मायै कीन्हा
जतिन सतिन सब हारा।
दस अवतार ईश्वरी माया
कर्त्ता कै जिन पूजा
कहै कबीर सुनो हो संतो
उपज खपैं सो दूजा।

मैं स्वयं आतंकित हो उठा था। यह मैं क्या सुन रहा था! यह कौन सी आवाज़ थी। उसने पहँचान लिया था कि निश्चय ही दलितों और अछूतों और गरीबों का वही देवता नहीं हो सकता, जो उच्च वर्णों और ऊँचों का हो। पहले पिता राम को मानते थे। फिर उन्होंने अवतार का खंडन किया।

मैंने पूछा : दादा। यह क्यों हुआ। तुम तो इसे मानते थे न?

'मानता था।' पिता ने कहा : 'परन्तु तब मैं इस देश के सब धर्मों को एक करना चाहता था। इस्लाम की गोदी में अनेक नीच जातियाँ ब्राह्मणों की कट्टरता से चली गई हैं। परन्तु मैं ब्राह्मण धर्म और इस्लाम दोनों को ही अमीरों और उच्चकुलों का धर्म मानता हूँ। हम गरीबों के तो यह दोनों धर्म नहीं हैं।'

'तो क्या जोग है?'

'जोगी असामाजिक लोग हैं, वे औरों के बल पर पेट पालते हैं। वे संसार के बोझ हैं। गुरु गोरखनाथ महान थे, पर उनके चेले नहीं हैं। गुरु गोरख ने बामारग को मारा था, चेले अनेक तरीके निकाल कर उसी में चले गये हैं।'

'तो फिर तुम क्या चाहते हो!'

'नया रास्ता।'

मैंने देखा!' उस समय पिता के मुख पर मनुष्य के भविष्य के विषय में चिंतन करते हुए अखण्ड विश्वास था।

'वह रास्ता कौन सा देवता मानता है दादा।'

'देवता।' दादा ने कहा—'मैं कैसे बताऊँ कमाल! मैं नहीं जानता। वह सब करता है पर उसे कोई बता कैसे सकता है, वह निश्चय उन रूढ़ियों और सीमाओं में बंधा नहीं है, जैसा ये लोग कहते हैं।' वे गाने लगे थे—

तेहि साहब के लागो साथा
दुइ दुख मेटि के होहु सनाथा।
दशरथ कुल अवतरि नहिं आया
नहि लंका के राय सताया।
नहिं देवकि के गर्भहिं आया
नहीं यशोदा गोद खिलाया।
पृथ्वी रमन दमन नहि करिया
बैंठि पताल नहीं बलि छलिया।
नहिं बलिराम सों माँड़ी रारी
नहिं हरिनाकुस बधल पछारी
रूप बराह धरणि नहिं धरिया
छत्रीं मारि निछत्रि न करिया।
नहिं गोबर्धन कर पर धरिया
नहीं ग्वाल सँग वन वन फिरिया।
गंडक शालग्राम न शीला
मत्स्य कच्छ ह्वै नहिं जलहीला।
द्वारावती शरीर न छाँड़ा
लै जगनाथ पिंड नहिं गाड़ा।
कहहि कबीर पुकारि कैं
वा पंथे मत भूलि।

जेहि राखे अनुमान करि
थूल नहीं असथूल।

मैं समझा।

पिता ने कहा : अगर इस्लाम से लड़ना है तो अवतार अच्छे हैं, ब्राह्मण धर्म है। पर क्या इस्लाम और ब्राह्मण धर्म के अलावा आदमी के लिये कोई रास्ता नहीं है जिसमें घृणा, भेद, ऊँच नीच न हो। लेकिन प्रजा नहीं समझती। वह इन्हीं के बंधनों में है। दुनिया से रोज की बुराई का दूर होना ही माया का हट कर भगवान का प्रकट होना है। लोग हिंदू संस्कृति की बात करते हैं, पर संस्कृति क्या वर्णों में बँधी है। हम दीन क्या कुछ नहीं है?

पिता चिंता में डूब गये थे।

मैंने पूछा था : 'दादा नया धर्म कैसा होगा?—

'बेटा वह रूढ़ि नहीं होगा।' पिता ने कहा और वे मग्न होकर गा उठे—

साधु साधु सब एक हैं
ज्यों पोस्ते का खेत
कोई विवेकी लाल है
नहीं सेत का सेत
जाति न पूछो साध की
पूछ लीजिये ज्ञान
मोल करो तलवार का
पड़ा रहन दो म्यान
साधू भूखा भाव का
धन का भूखा नाहिं
धन का भूखा जो फिरैं
सो तो साधू नाहिं।
बिना वसीले चाकरी
बिना बुद्धि की देह
बिना ज्ञान का जोगना
फिरैं लगाये खेह।

और मैंने देखा पिता हाथ की कमाई पर कितना ज़ोर देते थे। अब मैंने देखा है कि दक्षिण के लिंगायत भी कायिक पर बड़ा जोर देते हैं। पिता को मुफ्तखोरों से चिढ़ थी!

मुझे इस एक बात में सब धर्मों के व्यवहार की जड़ कटती हुई दिखाई दी।

पिता पहले सगुण मानते थे।

फिर वे रहस्य की ओर झुके।

रहस्य ने शून्य पर पहुँचाया।

शून्य ने साधू बनाया।

साधू बन कर भीख माँगनी पड़ी तो घृणा हो गई।

पेट के लिये इज्जत ने पुकारा।

इज्जत ने कहा—मेहनत कर।

मेहनत ने ईमान की ओर भेजा।

ईमान ने उन्हें ठोस तार्किक बना दिया।

संसार में पहले जिंदगी की जिम्मेदारियाँ ही माया मानी जातीं थीं। पिता ने उन जिम्मेदारियों में दूसरे को दुख देने और गले काटने वाली बात को माया कहा।

सगुण वे मानते नहीं थे, क्योंकि सगुण की आड़ में मनुष्य रूढ़ियों को मानता था। ब्राह्मण ढोंग फैलाते थे।

निर्गुण को वे नहीं मानते थे, क्योंकि उसे किसी प्रकार कोई समझा नहीं सका था।

हिंसा से उन्हें बड़ी घृणा थी। तभी कहा था—

बकरी पाती खात है
ताकी काढी खाल
जो बकरी को खात है
ताको कौन हवाल।
दिन को रोजा रहत है
रात हनत हैं गाय
यह तो खून वह बंदगी

कहु क्यों खुसी खुदाय ।
खुसी खाना है खीचरी
माहि परा टुक नौन
माँस पराया खाय कर
गरा कटावै कौन ।

मुसलमान शासक थे । जब उन्होंने सुना तो उन्हें क्रोध हो आया ।

मुल्ला रहमान अपने मुरीदों के साथ आये ।

'कहाँ है वह जुलाहा ?' वे पुकार उठे ।

हम तब चबूतरे पर बैठे थे । पिता ने खड़े होकर कहा: आयें । विराजें । हम पवित्र हुए ।

मुल्ला जी शांत हुए ।

कहा: सुना है तुम मुसलमानों के खिलाफ लोगों को भड़का रहे हो ?'

'नहीं मुल्ला साहेब ।' पिता ने कहा—'मैं किसी से जलता नहीं ।'

मुल्ला जी ने अपने मुरीदों की ओर देखा । जैसे अब कहो ।

एक मुरीद ने कहा : 'नहीं साहेब ! यह जुलाहा कहता था कि रोजा रखने वाला गाय खाता है । यह क्या हिन्दू वाली बात नहीं है ?'

'तुमने कहा था ?' मुल्ला ने पूछा ।

पिता मुस्कराये । कहा : 'तो किसी बेकुसूर जानवर की जान की हिफाजत करना आदमी को हिन्दू बना देना है ?'

'लेकिन हिन्दू गाय को नहीं खाते ।' मुल्ला जी ने कहा ।

'न खायें ।' पिता ने कहा —'वे दूसरे माँस खाते हैं ।'

'तौ तुम वैश्नों हो ?' मुल्ला जी ने कहा ।

'नहीं ।'

'क्या हो ।'

पिता चुप रहे ।

मुल्ला जी ने फिर पूछा । पिता ने कहा—

ऐसा लो तत ऐसा लो,
मैं केहि विधि कहौं गँभीरालो ।

बाहर कहा तो सतगुरु लाजै
भीतर कहौं तो झूंठा लो।
बाहर भीतर सकल निरंतर
गुरु परतापै दीठा लो।

मुल्ला जी समझे नहीं। कहा : तो तू अल्लाह को भी नहीं मानता। बौध है ?

'नहीं।' पिता ने कहा।

'फिर ?'

'मैं नहीं कह सकता', पिता कह उठे—

एकै काल सकल संसारा
एक नाम है जगत पियारा।
तिया पुरुस कछु कथो न जाई
सर्व रूप जग रहा समाई।

'मुझे स्त्री पुरुष सबमें वही दिखाई देता है, पर वह स्त्री नहीं है, पुरुष नहीं है, वह निराकार नहीं है, साकार में सीमित नहीं है।'

मुल्ला जी विक्षुब्ध हो उठे। बोले—'तू कुछ नहीं मानता ?'

'मैं सब मानता हूँ', पिता ने कहा।

'तो उसे समझा नहीं सकता।'

'आदमी की अकल ही कितनी मुल्ला साहेब। आदमी की पहुँच ही कितनी। वह तो उतना ही जानता है जिसकी कल्पना कर सकता है—

अवधू छोड़हु मन विस्तारा।
तो पद गहो जाहिते सद्गति
पारब्रह्म से न्यारा।
नहीं महादेव नहीं महम्मद
हरि हजरत सब नांहीं
आदम ब्रह्म नाहि सब होते
नहीं धूप नहिं छाँही।

असी*सहस्र पैगम्बर माहीं
सहस अठासी मूनी+
चंद्र सूर्य्य तारागन नाहीं
मच्छ कच्छ नहिं दूनीं।

'क्या बकता है?' मुल्ला जी गरजे।

पिता ने कहा : मैं सच कहता हूँ मुल्ला साहब ! आप ही बतायें—

पेटहुँ काहु न बेद पढ़ाया
सुनति कराय तुरक नहिं आया,
नारी गोचित गर्भ प्रसूती
स्वाँग धरै बहुतें करतूती।
तहिया हम तुम एकैं लोहू
एकैं प्राण वियायल मोंहूँ।

मुल्ला जी क्रोध से उठ खड़े हुए। बोले : सुना तुम सबने। काजी जी के पास चलो। यह अपने को न हिन्दू कहता है, न बौध, पर मुसलमानों की बुराई करता है।

'मजाल तो देखिये आका!' एक मुरीद ने दाद दी। 'यह सब काफिर हैं।

मुल्ला जी ने पलट कर कहा : 'जुलाहे ! तू आग में हाथ डाल रहा है।'

'कैसे मुल्ला साहब।' पिता शांत थे।

'बता।' मुल्ला चिल्लाया। तू कौन मजहब मानता है?'

पिता उठे। उन्नत ललाट उन्होंने हाथ उठा कर पुकारा—

ना मैं धरमी, नाहिं अधरमी
ना मैं जती, न कामी हो।
ना मैं कहता, ना मैं सुनता
ना मैं सेवक, स्वामी हो।
ना मैं बंधा, ना मैं मुक्ता

---

* अस्सी
+ मुनि

ना निरबंधी सरबंगी हो ।
ना काहू से न्यारा हूआ
ना काहू को संगी हो ।
ना हम नरक लोक को जाते
ना हम सरग सिधारे हो ।
सब ही कर्म हमारा कीया
हम कर्मन ते न्यारे हो ।

कोई नहीं समझा ।

एक जोगी जो मुसलमान हो गया था बोला—सुन्न को मानने वाला लगता है ।

पिता ने कहा : नहीं । वह सुन्न अगर मुझे बाँधता है तो मैं बंधने को तैयार नहीं हूँ । मेरे लिये सब बराबर हैं । मैं किसी भेद भाव को नहीं मानता—

आपुहि करता भे करतारा ।
बहु विधि बासन गढ़े कुम्हारा
बिधना सबै कीन यक ठाऊँ
अनिक जतन कै बनक बनाऊँ
जठर अग्नि महँ दिय परजाली
तामें आप भये प्रतिपाली ।।
साँची बात कहौं मैं अपनी ।
भया दिवाना और कि सपनी
गुप्त प्रकट है एकै मुद्रा ।
काको कहिये, ब्रह्मन सुद्रा ।।
झूठ गरब भूलै मति कोई
हिंदू तुरुक झूठ कुल दोई ।

'झूठ !' मुल्ला गरजा ।

'हिंदू भी !' कोई चिल्लाया ।

'नास्तिक है ।'

'अरे नीच जुलाहा है।'

पिता ने कहा : तुम भूले हुए हो । अगर तुम सचमुच भगवान के बनाये अलग २ हो, अगर हिंदू और मुसलमान जन्म से अलग हो तो मैं झूंटा हूँ। बोलो—

जो तोहि कर्ता वही विचारा
जन्मत तीन दण्ड अनुसारा
जम्मत शूद्र भए पुनि शूद्रा
कृत्रिम जनेऊ घालि जगदुंद्रा ।
जो ब्राह्मन बाम्हनि जाए
और राह तुम काहे न आये ?
जो तू तुरक तुरकिनी जाया +
पेटै काहे न सुनति कराया ?
कारी पीरी दूहौ+ गाई॥
ताकर+ दूध देहु बिलगाई।

यह ऐसी भयानक बात थी जिसको इन स्पष्ट शब्दों में सुनने को वहाँ किसी में भी ताव नहीं थी। सीधी चोट थी। लेकिन वह इन्सान की पुकार थी, वह जो न उच्चवर्णों से दबी थी, न इस्लाम के खड्ग से।

पिता ने जोर से हाँक लगाई—

दुइ जगदीश कहाँ ते आए
कहु कौनै भरमाया
अल्ला राम करिम केशव हरि
हजरत नाम धराया।
गहना एक कनक ते गहना

× पैदा किया हुआ

× दुहो

॥ गाय

× उनका

अलग कर दो !

तामैं भाव न दूजा
कहन सुनन को दुई कर घाते
एक नेबाज एक पूजा।
वही महादेव वही मुहम्मद
ब्रह्मा आदम कहिए
कोई हिंदू कोई तुरक कहावै
एक जमीं पर रहिये।
वेद किताब पढ़ै वे कुतवा
वे मौलाना वे पाण्डे
बिगत बिगत कै नाम धरायौ
एक माटी के भाँड़े।
कह कबीर ते दोनों भूले
रामहुँ किनहु न पाया,
वे खसिया, वे गाय कटावैं
वादै+ जनम गंवाया।

पिता ने कहा था—एक ज़मीन पर रहना है।

ज़मीन !

ज़मीन !!!

मेरे कानों में गूंजने लगा।

समता किसकी !!

धरती की !

क्यों ?

क्योंकि कोई भेद नहीं लगता।

यह बाद आपसी स्वार्थों के झगड़े हैं।

पिता को मुसलमान विदेशी लग कर भी घृणित नहीं थे। वह उन्हें भी रूढ़िओं में जकड़ा देखते थे। इस्लाम की बराबरी की पुकार की असलियत, ऊँच नीच का व्यवहार वे खूब समझते थे।

---

*बकरा +वादै : वाद विवाद में

और पिता ने जो मुल्ला साहब से कहा था उससे मिलता जुलता ही उन्होंने फिसलते पंडितों से भी कहा था :

पंडित देखो हृदय बिचारी
कौन पुरुक को नारी ।
सहज समाना घट घट बौलै
वाको चरित अनूपा
वाको नाम कहा कहि लीजै
ना ओहि वरन न रूपा ।
वेद पुरान कुरान कितेबा
नाना भाँति बखानी
हिंदू तरुक जैन औ, जोगी
एकल काहु न जानी ।
छ दरशन* में जो परवाना+
तासु नाम मनमाना
कह कबीर हम ही हैं बौरे ×
ई सब खलक० सयाना ।

उन्होंने स्पष्ट कहा था कि कोई भी भगवान को नहीं जानता । सब भगवान की आड़ में पाप कमाते हैं । उन्होंने व्यंग्य से कहा भी था कि यह सब जहान सयाना है, केवल कबीर ही पागल हो गया है । वे यह न कहते तो कहते भी क्या ? कोई विश्वास ही नहीं करता था ।

---

*षट दर्शन
+प्रमाण
× पागल
०संसार

वह रात की बेला थी। पिता ने गाया था :

जल बिच मीन पियासी।
मोहि देखि देखि आवै हाँसी ॥

और सचमुच वे हँस उठे थे।

'क्या हुआ ?' मैंने पूछा था।

'बेटा मुझे रोना आता है।'

'पर तुम हँसते हो ?'

'और मैं करूँ भी क्या ?'

'क्यों ?'

'देखता है यह संसार कितना भटका हुआ है। सारे जहान में भगवान है। सृष्टि ही एक आश्चर्य है। उस आश्चर्य की सीमाएँ बाँधकर यह लड़ता है और अपनी सीमित बुद्धि को ही सब कुछ कहने लगता है।

दूसरे दिन उधर अज़ान की पुकार सुनाई दी, इधर पिता ने सड़क पर तान छेड़ी—

ना जाने तेरा साहेब कैसा।
मसजिद भीतर मुल्ला पुकारे
क्या साहेब तेरा बहिरा है
चिउँटी के पग नेवर बाजें
सो भी साहब सुनता है।
पण्डित होय के आसन मारैं
लंबी माला जपता है।
अन्तर तेरे कपट कतरनी
सो भी साहब लखता है।
ऊँचा नीचा महल बनाया
गहरी नींव जमाता है।
चलने का मनसूबा नाहीं
रहने को मन करता है।
कौड़ी कौड़ी माया जोड़ी

गाड़ि जमीं में धरता है।
जेहि लहना है सो लै जैहै
पापी बहि बहि मरता है।
सतवंती को गजी मिलै नहिं
वेश्या पहिरे खासा है।
जेहि घर साधू भीख न पावै
भड़ुआ खात बतासा है।

लोग इकट्ठे होने लगे थे।

पंडित मुल्ला, जोगी, जैनी, सब ही असन्तुष्ट थे। पर दलित जनता प्रसन्न थी।

कबीर ने कहा था : तुम धरम के नाम पर वेश्या को नचाते हो और वह स्त्री जो सती साध्वी है उसे पेट भरने को भी नहीं मिलता। एक ओर स्त्री से खिलवाड़ करके तुम स्त्री के गौरव को घटा रहे हो। जो जीवन को पवित्रता से बिताते हैं उन्हें सहायता नहीं देते, भीख तक नहीं देते, भड़ुओं को बतासे खिलाते हो। धन जोड़ते हो, वही तो माया है।

परन्तु उच्च वर्गों ने नहीं सुना।

वे सब अलग अलग गिरोह बंदी करके पिता की हत्या की योजना करने लगे।

मैं पिता को घर ले आया।

'लोई', पिता ने कहा—'कमाल घबराता है।'

माँ ने मुस्करा कर कहा—'मेरा बेटा डरना क्या जाने कंत। वह पीछे नहीं रहेगा।'

दूसरे दिन तो वे सोचते रहे, पर तीसरे दिन दुपहर ढले वे बाजार में गाने लगे—

अरे इन दोउन राह न पाई।
हिंदू अपनी करै बड़ाई
गागर छुवन न देई।
वेस्या के पायन तर सोवै

यह देखो हिंदुआई ।
मुसलमान के पीर औलिया
मुरगी मुरगा खाई ।
खाला केरी बेटी ब्याहैं
घरहि में करैं सगाई ।
बाहर से इक मुर्दा लाए
धोय धाय चढ़बाई ।
सब सखियाँ मिलि जेंवन बैठी
घर भर करै बड़ाई ।
हिंदुन की हिंदुआई देखी
तुरकन की तुरकाई ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधौ
कौन राह ह्वै जाई ।

जुलाहे ठट्ठा करके हिंदुओं और मुसलमानों को चिढ़ाने लगे।

एक पंडित आगे आया। उसने कहा : कबीर ! मुझे जबाब दे।

पिता ने मुड़कर देखा।

'मैं पूछता हूँ तू मुसलमानों का गुप्त प्रचार कर रहा है ? तभी तू छूत मिटाना चाहता है ?'

पिता ने कहा : नहीं पण्डित जी ! मैं उनकी तारीफ़ नहीं करता। मुझे तो दोनों ही में खोट दिखाई देता है।

'खोट दीखता है तो तू अपना मार्ग बता।'

'मारग एक नहीं हो सकता बाबा। मार्ग की लकीर न खींचो, न उसे पीटो।'

'तो मरजाद क्या रहेगी ?'

'आदमियत।'

'वह क्या है ?'

'किसी को दुख न देना।'

'पर वह तो कहने की बात है कबीर, करने में कभी न आई है न आयेगी'

पिता ने आँखें उठाकर दूर देखते हुए कहा- वह दिन भी आयेगा बाबा। वह दिन भी आयेगा।

'आयेगा तब आयेगा, अभी तो धरम रख।'

कुछ मुसलमान इस चर्चा से खुश थे।

एक ने कहा : कबीर तू मुसलमान होजा।

'होऊँगा,' पिता ने कहा—'पर पहले मुझे यह समझाओ—

दर की बात कहौ करवैसा
बादसाह है कौने भैसा।
कहाँ कूच कहँ करे मुकामा
कौन सुरति को करौं सलामा।
मैं तोहि पूछों मुसलमाना
लाल जरद का ताना बाना।
काजी काज करो तुम कैसा
घर घर लबै करावौ गैसा।
बकरी मुरगी किन फुरमाया+
किसके हुकुम तुम छुरी चलाया।
दरद न जाने पीर कहावे
बैंता* पढ़ि पढ़ि जग समुझावे।
कह कबीर एक सय्यद कहावै
आप सरीखा जग कबुलावै।

हिंदू चिल्लाये : जो हो कबीर अपना ही है।

कबीर ने चिल्ला कर कहा : नहीं, मैं किसी का नहीं हूँ। मैं किसी का नहीं हूँ।

वे चिल्लाये—तू कौन है ?

+ बनाये।
* छन्द।

'मैं आदमी हूँ।'

'तू भगवान मानता है ?'

'मानता हूँ।'

'वह क्या है ?'

'मैं नहीं जानता, न तुम जानते हो। तुममें से कोई नहीं जानता, सब झूँट कहते हो।'

पिता का स्वर दृढ़ था। उन्होंने कहा: बता सकते हो,उसे बता सकते हो ?

उस स्वर को सुनकर कोई नहीं बोला।

पिता ने फिर कहा : वह अगम है और इसलिये हमारी सीमित बुद्धि से परे है। उसके नाम पर तुम लड़ते हो। तुम दोनों ही सचाई से बहुत दूर हो। तुम पागल हो। तुम सचाई को सह नहीं सकते। तुम पागल हो गये हो। तुमने अपनी बुद्धि को बाँध लिया है।

और पिता ने सुनाया—

सँतो देखउ जग बोराना
साँच कहो तो मारन धावै
झूठे जग पतियाना।
नेमी देखे धरमी देखे
प्रात करहिं असनाना।
आतम मारि पषाणहिं पूजैं
उनमें कछू न ज्ञाना।
बहुतक देखे पीर औलिया
पढ़ें किताब कुराना।
कै मुरीद तदबीर बतावै
उनमें उहै गियाना।
आसन मारि डिभ÷ धरि बैठें
मन में बहुत गुमाना।

÷ पाखण्ड।

पीत पाथर पूजन लागे
तीरथ गरब भुलाना।
माला पहिरे टोपी दीन्हें
छाप तिलक अनुमाना।
साखी सबदै गावत भूले
आतम खबरि न जाना।
कह हिंदू मोहि राम पियारा
तुरुक कहैं रहिमाना।
आपस में दोउ लरि लरि मूए
मरम न काहू जाना।

मैंने बढ़ कर कहा : पर दादा। तुम्हें समझाना होगा। वह भगवान है क्या?

पिता ने कहा : तो सुन कमाल—

बाबा अगम अगोचर कैसा
ताते कहि समुझाओं ऐसा।
जो दीसै सो तो है नाहीं,
है सो कहा न जाई।
सैना बैना कहि समझाओं
गूँगे का गुड़ भाई।
दृष्टि न दीसै, मुष्टि न आवै
बिनसे नाहिं नियारा।
ऐसा ज्ञान कथा गुरु मेरे
पण्डित करौं बिचारा।
बिन देखे परतीति न आवै
कहे न कोउ पतियाना।
समुझा होय सो सब्दे चीन्है
अचरज होय अयाना।

कोई ध्यावै निराकार को
कोई ध्यावै साकारा।
वह तो इन दोऊ ते न्यारा
जानै जाननहार ।
काजी कथै कतेब कुराना
पण्डित वेद पुराना।
वह अच्छर तो लखा न जाई
मात्रा लगै न काना+।
नादी बादी पढ़ना गुनना
बहु चतुराई मीना*।
कहै कबीर सो पड़ै न परलय
नाम भक्ति जिन चीना×।

और फिर जब भीड़ नहीं समझ सकी तो कबीर ने फिर सुनाया :

मेरा भगवान राम है भाइयो। पर वह हिंदुओं का राम नहीं है। वह तो सबसे अलग है—

वे विभोर से गा उठे—

रामगुण न्यारो न्यारो न्यारो,
अबुझा लोग कहाँ लौं बूझैं
बूझनहार बिचारो ।
केते रामचन्द्र तपसी से
जिन जग यह बिरमाया।
केते कान्ह भए मुरलीधर
तिन भी अन्त न आया।
मच्छ कच्छ वाराहस्वरूपी

+ बिन्दी।

* युक्त।

× पहिचानी।

जागे और भीड़ों ने कहा : कबीर ठीक कहता है।

कौनसा कबीर !

जो हिंदू नहीं है। जो मुसलमान नहीं है। जो जोगी नहीं है।

जो छुआछूत और ऊँच नीच नहीं मानता, जो हिंसा और दंभ नहीं मानता, जो समाज से दूर रहकर दूसरों की कमाई पर पलना नहीं मानता। जो स्त्री को केवल भोग की वस्तु नहीं मानता, जो संतान के मोह में दूसरों का गला काटना नहीं मानता, जो धन को ही धन के लिये नहीं चाहता। उसे कोई माने या न माने पर इन्हीं पूर्ण विश्वासों ने उस नंगे गरीब को वह आत्म गौरव दिया था कि वह पुकार उठा था—

धरती तो आसन किया
तम्बू कौ असमाना ।
चोला पहिरा खाक का
रह पाक* सम्माना ।

और यह सब मनुष्यों को समान मानने की घोषणा आज तक मेरे कानों में गूँज रही है और शायद युगों तक यह इसी तरह अपमानित होकर भी निर्द्वन्द्व गूंजा करेगी, शताब्दियों के निविडांधकार में चिल्लाया करेगी·····

---

* इन्द्र ।

उसकी राह अजीब थी

मैं जानता हूँ, जो मैं कह रहा हूँ वह आपको कुछ सहज ग्राह्य नहीं है।

पर यह सत्य है।

वह तो बिल्कुल अलग था। लोग पूछते हैं कि उसमें ऐसा क्या था जो उसे तुम इतना महान मानते हो। मैं बताता हूँ सुनो।

यह तो सत्य ही है कि वह जुलाहा था। नीच जात था और इसीलिए वह ऊँचे वर्णों को पहले बड़ा मानता था। गुरु रामानन्द से दीक्षा लेकर वह अपने को पवित्र समझने लगा। परन्तु शीघ्र ही नाथजोगियों, सूफियों, वेदान्तियों ने उस पर प्रभाव डाला। वह उलटबाँसी बोलने लगा। परन्तु वह इतने में ही समाप्त नहीं हो गया। वह नीच जाति का आदमी ऊँची जातों से रियायतें माँगने में ही खतम नहीं हो गया। वह तो आगे निकल गया। और वहीं वह नयी बात कहता हूँ कि उसने जहाँ हिन्दू, मुसलमान, जोगी, जैन, शाक्त और बौद्धों को नहीं माना, तब वहीं उसने मनुष्य के नये जागरण की नींव डाली। वह यह नहीं कह सका कि ईश्वर क्या था। उसके पास

जो वह सोचता था, उसे समझाने के लिए शब्द नहीं रहे क्योंकि वह जो कहना चाहता था, लोग उसे नहीं सुनते थे। लोग तो अपने धर्म के बंधनों में बँधे थे। लोग तो वही भाषा समझते थे जो उनके धर्मों में थी। और कबीर कह रहा था कि यह सृष्टि अवश्य रहस्य है, पर यह रहस्य सीमाओं में कैसे बाँधा जा सकता है। वह रहस्य तो महान है। वह सब ही ईश्वर है। तब कबीर ने कहा था कि यदि वह रहस्य महान् है तो मनुष्य को भी दुनियाँ में अच्छाई करनी चाहिये। कितनी सीधी बात थी! दूसरों का गला काटना वह बुरा समझता था। और यह बातें उससे पहले किसी ने नहीं कही थी। वह परिवार में रहता था, खाता था तो हाथ पाँवों से काम कर। वह यथार्थ के लिये उतर आया था। और उसने समाज की नीवों को बदलना चाहा था। वह तो गरीब था, नीच था। उसके लिये उच्चवर्ण आदर्श नहीं थे, वह उच्च वर्गीय संस्कृति का मोह नहीं करता था। उसके पास सीधी साधी भाषा थी। वह मानव को सर्व श्रेष्ठ मानता था।

क्योंकि वह मूलतः मानव था। मैं देख रहा हूँ, इतनी जल्दी उसके चेलों ने उसके यथार्थवादी शब्द छोड़ दिये हैं, वे उसके पुराने योग, उलट बाँसी रहस्य, और वेदांती विचारों पर जोर देते हैं। परंतु क्या वे उसे डुबा सकेंगे?

और मुझे याद आ रहा है।

होली की भीड़ थी। लोग झूम रहे थे। कबीर तब युवक था। भीड़ बढ़ती जा रही थी। धीरे-धीरे लोग गुँसाई जी के घर की ओर जा रहे थे। वहाँ भाँग का इन्तजाम था। राजा जी के कारिंदे भीड़ के साथ थे। अबीर गुलाल उड़ रहा था।

गुँसाई जी आये। सबने जय जयकार किया।

कबीर ने देखा। सिर हिलाया। और फिर आगे बढ़कर गाया—

फूटी आंखि विवेक की
लखैं न संत असंत

जाके सङ्ग दस बीस हैं
ताकौ नाम महंथ

अररर····कबीर···

भीड़ मस्त हो गई !

'और क्या कबीरे !' एक चिल्लाया।

पर सिर से गीला गुलाल न गिरा। गुसाँई के चेलों ने लहू गिराया। गिर गया।

देवीलाल भागा।

नीमा ने सुना तो जीने पर से लुढ़क कर बेहोश हो गई। केवल लोई निर्भय चरण धरती वहीं जाकर रुक गई। उसने कबीर का खून पोंछा !

'तू कौन है ?' एक चेले ने पूछा।

लोई ने उसके लहू की बिंदिया लगा कर सिर झुका लिया।

'लेजा इसे।' चेले ने कहा 'खबरदार जो फिर इधर आया है। जुलाहा ! कमीना। नीच !'

लोई ने सुना। कहा : और कहलो पण्डित। पर वह क्या है यह मैं जानती हूँ।

लोई के बाप ने सुना तो भागा भागा आया। पर जब वह आया उसने देखा लहू से आँचल भिगोये क्वारी बेटी बेहोश कबीर को ऐसे लिए बैठी थी जैसे पुरानी व्याहता हो। बाप को लगा वह सावित्री थी, उसकी गोद में सत्यवान था।

यों लोई कबीर एक हो गये।

कबीर बच गया। पर माँ न उठी।

सांझ आ गई थी। नीमा खाट पर लेटी थी। लोई सिरहाने गोद में उसका सिर लिये बैठी थी। कबीर बाहर बुन रहा था।

माँ ने पुकारा : कबीर !

'आया माँ !'

वह भीतर आया ।

'क्या है माँ !'

माँ के मुख पर एक गहरी निस्तब्धता थी ।

'यहाँ आ बेटा !'

कबीर निकट आ गया । माँ उसका मुँह हाथ में लेकर देखती रही । शांत अपलक । वे बूढ़ी आँखें प्रभा को लिये एक बार पुलकित हो उठीं और उसने उद्वेगहीन स्वर से पुकारा : बेटा ।

'माँ !' लोई रो उठी ।

'क्यों रोती है लोई ?' माँ ने कहा । 'आज मैं जा रही हूँ बेटी ! रोने की क्या बात है ?'

पर वह रोती रही । कबीर अवाक् देखता रहा । माँ का चेहरा कितना शांत था । वे आँखें कितनी गहरी थीं । उन होठों पर कितनी क्षमता और क्षमा थी ।

नीमा ने कहा : बेटा !

'हाँ माँ !' कबीर ने फुसफुसाया ।

'मैं चली जाऊँगी बेटा ! रोना नहीं । मेरा काम पूरा हुआ । अब मुझे दुख नहीं है । लोई आ गई है न ? वह सब सम्भाल लेगी । छोटी तो है, पर लड़की में समझ सुसराल में ही आती है बेटा । इसे धोखा न दीजो ।'

कबीर आँखें फाड़ कर देखता रहा ।

माँ ने कहा : आज तक मैंने नहीं कहा बेटा । पर आज कहती हूँ । एक दिन मैं और तेरा बाप नीरू चले जा रहे थे । रास्ते में एक अनाथ, हाल का पैदा हुआ बच्चा पड़ा था । उसे हम उठा लाये और अपना कह कर पाल लिया । बेटा वही तू है···

माँ का वाक्य पूरा नहीं हुआ । वह सदा के लिये चली गई । लोई फूट फूट कर रो उठी, पर कबीर स्तब्ध पत्थर सा बैठा रहा ।

लोई ने उसे झकझोर कर कहा : रो अभागे ! तेरी माँ मरी है ।

कबीर ने उसी मुद्रा में कहा : मेरी माँ ! वह तो मुझे जनम देकर छोड़

गई थी लोई। मैं पाप की संतान हूँ....

वह कितना कठोर दुःख था जो उसके हृदय को मथे दे रहा था।

लोई ने कहा : बेदरद ! माँ वह नहीं थी, माँ तो यह है....

'तुझे मुझसे नफरत नहीं लोई ?' कबीर ने वैसे ही पूछा। 'मैं तो पाप की संतान हूँ....'

लोई हँसी। उस समय लाश पर रोते रोते वह अचानक हँस उठी और उसने कहा : पाप ! कैसा पाप !! मुझे तो तू पहले का सा ही लगता है।

'लोई....!' कह कर कबीर तब रोया था और उसने नीमा के पाँवों को आँसुओं से भिगो दिया था। कितनी महान थी वह स्त्री जिसने एक अपरिचित अनाथ को अपना बनाकर पाला था, उससे एकाकार कर लिया था...

जीवन का नया अध्याय खुला था। कबीर सोचता है। कौन होगी वह अभागिन जिसने छाती से टपकते दूध की अवहेलना कर के उसे जानवरों के लिये फेंक दिया होगा !

कोई कुमारी ! या विधवा !!

पुरुष से छली हुई !!

वह काँप उठता।

प्रसिद्ध महात्मा रामानन्द काशी आये थे। जोगी जतियों में धूम थी। कबीर ने कहा : लोई।

क्या है ?

मैं उनके पास जाऊँगा।

क्यों ?

मैं उनका शिष्य बनूँगा।

लोई ने आँखें उठा कर देखा था और कहा नहीं था कुछ, केवल फिर चरखा संभालने लग गई थी।

कबीर झुँझलाकर चला आया था।

साधुओं की भीड़ में गुरू रामानन्द अपने भव्य मुख मण्डल पर मुस्कान लिये बैठे थे।

कबीर बढ़ने लगा।

एक चिल्लाया : 'कौन है ?'

'जुलाहा है।' दूसरा बोला।

'अरे देखता नहीं। कहाँ बढ़ा आ रहा है नीच !'

'महाराज बैठे हैं।'

कबीर ठहर गया था। उसने पुकारा था : महाराज ? यह दास शिष्य बनने आया है।

साधू ठठा कर हँस उठे थे।

रामानन्द ने देर तक देखा था। कबीर निर्मल दृष्टि में भक्ति उँड़ेले दे रहा था। रामानन्द का हाथ उठा। सब शाँत होगये। कबीर ने प्रणाम करके पाँव छूने को हाथ बढ़ाया।

'रुक जा।' रामानंद ने कहा और फिर जैसे वे गंभीर चिंतन में डूब गये। कबीर हाथ बढ़ाये ही रुक गया।

कुछ देर बाद गुरू ने कहा : तेरा नाम ?

'प्रभु ! कबीर।'

'कौन जात है ?'

'जुलाहा हूँ।'

'तुझे भगवान ने शूद्र बनाया है जुलाहे। अपना काम कर। वही तेरे लिये धर्म है।

कबीर को काठसा मार गया।

उसने कहा : महाराज ! लोग आपके द्वार से निराश नहीं लौटते। क्या राम मेरा नहीं है ?

गुरू रामनन्द ने सुना तो उठकर चले गये। वे उत्तर नहीं दे सके। और कबीर वहीं बैठ गया। शाम हो गई। वे मंदिर से बाहर नहीं निकले। आते जाते साधुओं ने पहले तो खिल्ली उड़ाई फिर उसे धक्का देकर भगा दिया।

भोर की पहली किरन भी नहीं फूटी। गंगा के घाट पर स्वामी रामानन्द खड़े आकाश की ओर देख रहे थे। उन्होंने धीरे से अकाश की ओर हाथ उठा कर बड़बड़ाया : राम तू किसका है ?

गंगा हरहरा उठी ! मानों पतिततारिणी ने उत्तर दे दिया। वह तो सब की थी। रामानन्द सीढ़ी से उतरने लगे।

हठात् उनका पाँव अंधेरे में किसी से छू गया।

'राम राम !' रामानन्द ने कहा—'राम राम !'

और उनका पाँव पकड़ कर किसी ने दुहराया, राम राम ! राम राम !

'कौन !' रामनन्द ने काँपते स्वर से पूछा।

'गुरुदेव ! मुझे मुक्ति का बीजाक्षर मिल गया।' किसी ने विभोर स्वर से रामानन्द के चरणों पर सिर रख कर कहा।

'कबीर !' रामनन्द का कण्ठ काँप गया। वे रो उठे और उन्होंने उसे वक्ष से लगा कर कहा : कबीर ! तू जीत गया कबीर। मुझे तूने अहं और अभिमान, अन्याय और पाप के बंधनों से मुक्त कर दिया कबीर ! मैं अन्धा हो गया था। सारा ब्रह्माण्ड राम है वत्स। यह भेद मनुष्य के बनाये हुए हैं। उसके लिये सब बराबर हैं। वही राम तू है,वही गंगा है। राम तो सबका है।

'गुरुदेव !' कबीर विभोर सा पुकार उठा था।

गंगातीर की शांत बेला में प्रभात का समीरण सिकता पर झूम रहा था। कबीर वहीं खड़ा रहा और जपता रहा : राम राम···राम राम···

आज उसे लग रहा था वह मुक्त हो गया था······

रात भर के जागे नैन लाल हो गये थे। लोई बैठी थी। कबीर लौटा तो पागल सा था।

'लोई !' वह चिल्ला उठा।

'क्या हुआ ?' लोई चौंक पड़ी।

'मुझे गुरु रामानन्द ने शिष्य बनाया लोई ! मुझे राम मिल गया। मैं भक्ति का अधिकारी हो गया।'

लोई मुस्करा दी। धीरे से कहा : मुझे तू वैसा ही लग रहा है कंत जैसा पहले था। क्या ब्राह्मण के मना कर देने से राम तेरा नहीं था ? क्या उसके छूकर कह देने से ही तू मुक्त हो गया !

कबीर ने सुना तो देखता ही रह गया। अवाक्, निस्पंद···

लोई ने फिर कहा : यह बच रहा है, इसे बुनले, सुबह को चून भी नहीं है······क्या आज राम को भूखा ही रखेगा···

कबीर ने सिर झुका लिया।

कमाल के जन्म से पहले की बात है। कबीर के घर साधू आने लगे थे। आकाश में बादल घिर रहे थे। किसी ने द्वार थपथपाया।

'कौन है ?' कबीर ने पूछा।

लोई ने द्वार खोला। एक बूढ़ा साधु था।

'पधारो महाराज !' कबीर ने कहा। साधु भीतर आया।

परन्तु लोई के चेहरे पर उदासी आगई। आज वे दोनों भूखे सो रहे थे किंतु अतिथि भूखा कैसे रहेगा ? लोई चुपचाप चली आई। जबलौटी तो

आटा था। साधू की सेवा हुई। साधू चला भी गया। पर लोई जहाँ बैठी थी वहीं बैठी रही।

कबीर ने कहा : बचा है कुछ लोई !

'हाँ।'

'तू खाले।'

'नहीं, तुम खालो।'

पर फिर दोनों खाने बैठे। लोई हठात् कबीर के पक्ष पर सिर रख कर फूट फूट कर रोने लगी।

'क्या हुआ ?' कबीर ने कहा।

लोई कह नहीं सकी। अन्त में कबीर ने सुन ही लिया।

बोला : फिर ?

लोई ने कहा : वचन दिया था तो क्या हुआ ! पाप निभाना मुझसे नहीं होगा।

कबीर ने कहा : पाप ? उसे पाप समझना ही पाप है लोई ! घर में नाज नहीं था। अपने पेट के लिये नहीं था, हमने भीख नहीं माँगी। पर दूसरा आया। उसका तो पेट भरना अपना धरम था। हम भी क्या धनी अमीरों की तरह आँखें फेर लेते ? तू नाज माँगने गई। जिसने नाज दिया उसे तेरा रूप अच्छा लगा। उसने बदले में तुझे माँगा। तू हाँ कर आई। तो फिर वचन निभा लोई।

'नहीं, नहीं', लोई रो पड़ी।

कबीर ने हँस कर कहा : पगली। तू समझती है मैं तुझसे तब घिन करूँगा ? क्या चाहता है वह सेठ। तेरी जवानी से खेलना चाहता है न ? खेलने दे उसे क्योंकि तूने वचन दिया है। तू पाप के लिए उसके पास नहीं जाती लोई। पाप तो उसमें है। तू पवित्र है। तू अपने लिये नहीं, दूसरे के लिये भीख माँगने गई थी। आज तो कोई जवानी ही चाहता है। कल को कोई सिर भी माँग बैठा, तो क्या तू हट जायेगी !

भयानक वर्षा हो रही थी। कबीर ने लोई को टाट ओढ़ा कर कंधे पर बिठा लिया था।

जब वे सेठ के घर पहुँचे तो कबीर द्वार पर बठ गया। लोई ने द्वार खड़-खड़ाया। सेठ अंधा और पागल था। वासना चिल्ला उठी : लोई।

लोई दृढ़ खड़ी रही। कहा: मोल चुकाने आई हूँ। वचन दे गई थी न।

सेठ ने देखा। लोई निर्भय खड़ी थी। वह समझा नहीं। घबराया भी। उसने कहा : तू भींगी नहीं लोई। बाहर तो मूसलधार पानी गिर रहा है।

'मुझे मेरा कंत कंधे पर बिठाकर लाया है।'

सेठ ने सुना तो चार हाथ पीछे हट गया। वह घुटनों में मुँह छिपाकर बैठ गया और रोने लगा। लोई पास चली गई। कबीर ने सुना। सेठ ने कहा : लोई तू मेरी माँ है, तू मेरी माँ है।

कबीर द्वार पर आ गया और उसने कहा :

पहले यह मन काग था
करता जीवन घात
अब तो मन हँसा भया
मौती चुँगि चुँगि खात।
कबिरा मन परबत हता
अब मैं पाया कानि
टाँकी लागी सब्द की
निकसी कंचन खानि।

दूसरे दिन काशी में चर्चा चल पड़ी। नगर का प्रसिद्ध सेठ आया और कबीर के सामने उसने साष्टांग दण्डवत की। और पाँव पकड़ कहा : गुरू मेरा प्रायश्चित बताओ।

कबीर ने मुस्कराकर कहा : प्रायश्चित एक ही है रे धनी। करेगा!

'आज्ञा दो गुरू!'

'माया तेरी शत्रु है। उसका दास नहीं बन। खाली राम राम करने से लाभ नहीं होगा।

जो जल बाढ़ै नांव में
घर में बाढ़ें दाम।
दोऊ हाथ उलींचिये
यही सज्जन कौ काम।

'जा! दीनों की सेवा कर! नारी का सम्मान कर!'

सेठ पाँव छूकर चला गया।

लोई ने देखा तो कबीर के चरणों पर सिर धर कर प्रणाम किया। कबीर ने कहा—

सेज विछावै सुन्दरी
अन्तर परदा होय।
तन सौंपे मन दे नहीं
सदा सुहागिन होय!

कबीर अधेड़ावस्था को पार कर रहा था। जीवन भर मेहनत मजदूरी करने से उसके शरीर में अब भी बल था। माथे पर बाल कुछ सफेद हो गये थे। लोई के कानों पर लटें सफेद हो गई थीं। और कमाल तब तरुण था।

दरबार भरा हुआ था। सारी काशी इकट्ठी होगई थी। सुल्तान सिकन्दर लोदी सोने के सिंहासन पर बैठा था।

सामने कबीर लोहे की जंजीरों में बँधा मुस्करा रहा था। असंख्य प्रजा हरहरा रही थी।

मीरमुंशी के कह चुकने पर निस्तब्धता छा गई। अपनी नुकीली नाक पर तराजू की तरह अपनी गिद्ध जैसी आँखें उठा कर सुल्तान ने कठोर स्वर से

पूछा : यह सच है जुलाहे कि तूने रियाया को भड़काया ?

लोदी हिंदी बोल रहा था।

'मैंने नहीं भड़काया सुल्तान।' कबीर ने उत्तर दिया। 'यह ग़लत है!'

काज़ी उठा। उसने कहा : हुजूर मुझे इजाजत हो तो मैं अर्ज करूँ ?

'कहो!' सिकन्दर ने कड़कती आवाज़ में कहा।

लोई ने देखा। कमाल ने सुना। काज़ी ने कहा : यह जुलाहा लोगों से कहता है कि नमाजी झूँठे हैं। मुसलमान हत्या करते हैं। गाय काटते हैं। यह मुसलमानों के खिलाफ नफ़रत पैदा करता है।

सिकन्दर ने गरज कर कहा : सुनता है ?

तब कबीर ने हाथ उठाया। उसके हाथ में बंधी लोहे की शृंखला झन-झना उठी। उसने कहा : मैं किसी से नफरत नहीं करता। हिंदुओं में वर्णा-श्रम व्यवस्था ने इन्सान को इन्सान से बाँट दिया है। उनके अवतारों की कथाओं ने जनता को रूढ़ियों में फाँस लिया है। मूर्ति पूजा के नाम पर मंदिरों में लूट मची हुई है। जैनी और बौद्ध ईश्वर को नहीं मानते, पर उनके आच-रण किसी भी तरह हिंदुओं से कम रूढ़िवादी नहीं हैं। जोगी संसार में रह कर भी दूसरों की कमाई पर रहते हैं। एक दिन मैं भी उनकी रहस्य की बातों से, हठयोग से प्रभावित हुआ था। पर वह सहज नहीं था, उसका अन्त पाषंड ही है। मैं इन सबको नहीं मानता। लोग कहते हैं जम्बूद्वीप का धर्म सना-तन है, वेद भगवान का बनाया है, मैं इसे भी नहीं मानता। वे सब कहते हैं मैं नीच हूं और मुसलमानों का दोस्त हूँ। और तुम मुझे मुसलमानों का दुश्मन समझते हो। तो सुनो। मैं तुम्हारी तेग़ से डरता नहीं। क्या तुम्हारा मजहब यही है कि तुम बेकुसूर जानवरों को काट कर खाओ और रोजे नमाज का ढोंग करो।

सिकन्दर चिल्लाया : जुलाहे !!

कबीर ने कहा : तू मुझे रोक लेगा सुल्तान ? विधाता भी मुझे नहीं रोक सका। मेरा सहारा बचाने वाला है। अगर ब्राह्मणों, जैनों, जोगियों, शाक्तों, बौद्धों और कापालिकों का बस चलता तो वे कभी का मुझे मार देते। पर मेरे साथ यह थे······

कबीर ने गरीबों को भीड़ की तरफ हाथ उठाया और कहा : इन्होंने मुझे बचाया। पण्डों, मठाधीशों के गुर्गे मुझे मार नहीं सके। और तुम मुहम्मद का नाम लेते हो, कुफ्र को खतम करने के नाम पर मंदिरों का सोना लूटने के लिये मजहब की आड़ लेते हो ? तुम्हारे मुल्ला तुम्हें खींच कर हिमायत के लिये लाये हैं ! हम गरीब थे, हैं। जैसे हिंदू राजा थे, वैसे तुम हो। और तुम लोगों को बहका कर मुसलमान बनाते हो। उससे क्या फरक पड़ता है। तुम सब इन्सान को इन्सान नहीं रहने देना चाहते· · ·

सिकन्दर ने सुना। भीड़ चिल्लाई : कबीर की· · ·

जय !· · · ·

कबीर की· · · ·

जय !

उस अपराजित साहस को देखकर सिकंदर लोदी मन ही मन थर्रा गया।

उसने काज़ी की ओर देखा।

काज़ी ने कहा : हुजूर ! यह बागी है।

'जानता है इसका नतीजा !' एक मुल्ला चिल्लाया।

कबीर ने मुड़कर कहा: कौनसा नतीजा है जिससे डरकर मैं झूंठ बोलूं ?

लोई ने चिल्ला कर कहा : कंत अमर है। तू गरीबों की आन है।

सिकंदर मुड़ा। पूछा : कौन है यह औरत ?

'हुजूर,' काज़ी ने कहा—'इसकी बीबी है।'

सिकंदर के माथे पर बल पड़ गये।

लोई कह रही थी : मार डालो। डराते किसे हो ? अरे इस देश की धूल में जाने कितने हुकूमत करने वाले सिर पटक कर मर गये। पर गरीब अमर हैं। मेहनत और ईमान की कमाई खाने वाला कभी नहीं मर सकता।

कबीर के होठों पर मुस्कराहट आ गई। वह चिल्लाया : भाइयो ! कायर की मौत मरने से तो बहादुर की मौत मरना अच्छा है। हमारे देश में वही अपना है जो आदमी की आजादी के लिये खड़ा है। यह मुसलमान ही नहीं, इंसान और इंसान के बीच दीवार खड़े करने वाले पण्डित, जोगी, जती, जैन, बौद्ध, शाक्त, सब विदेशी हैं। वे धरम के नाम पर ऊँच नीच बना कर

लूटते हैं। मैं वह नहीं हूँ जो इस देश के ऊँच नीच वाले कायदों को मान कर सिर झुकादूं और उसे अपना हिंदू धरम कह कर इस्लाम को विदेशी कहदूं। मेरे लिए तो यह सब ग़लत है। यह सब धोखा है। यह सब जड़ता और घृणा पर पलने वाले सिद्धाँत हैं, जो गरीबों को गरीब और लुटेरों को लुटेरा और हरामख़ोर रखते हैं।

कोलाहल होने लगा। सुल्तान क्रोध से व्याकुल हो उठा। उसने चिल्ला कर कहा : जुलाहे ! तेरी मौत तेरे सिर पर मंडरा रही है।

कबीर ने हँस कर कहा : सुल्तान ! पलट कर देख ! कोई इस धरती को ले गया है।! इस धन और हुकूमत के हाथों तू बिक चुका है। अब तू नहीं बोलता, तेरा झूंठा अहंकार बोलता है। मैं मरूँगा जरूर, कल नहीं अभी, पर तू तो अमर ही रहेगा न ? नादान—

माली आवत देखि कर
कलियन करी पुकार
फूले फूले चुन लिये
काल्हि हमारी बार ।

तू मुझे डराता है। तेरे यह सिपाही मुझे क्या मार सकते हैं ! मेरा मैं तो कभी का छूट गया, जब डरने वाला ही नहीं रहा, तो फिर मुझे किसका डर है ?

भीड़ चिल्लाई : जय कबीर !

उस भीड़ में मुसलमान भी थे, लेकिन गरीब ।

काज़ी ने कहा 'हुजूर, मुसलमान भी इसके साथ हैं !'

सिकंदर लोदी खड़ा हो गया। और सामने कबीर बंधा खड़ा था। सोने के सिंहासन पर खड़े हुए, खड़खड़ाते शस्त्रों से सुरक्षित लोदी के चिंतित माथे पर बल पड़ गये थे। कबीर उनके बीच में लोहे की जंजीरों में बंधा भी मुस्करा रहा था। कमाल ने देखा लोई निडर थी, जैसे वह आज कबीर पर न्यौछावर थी।

लोई चिल्लाई : सुल्तान ! तेरा पाप तुझे डरा रहा है। देख ! तेरे सामने वह किस शान से खड़ा है। सत्य के तेज ने उसे आग बना दिया है और तू

सोने के सिंहासन पर चढ़कर भी मिट्टी ही बना रहा।

सिकन्दर सह नहीं सका। उसने इंगित किया। और देखते ही देखते मस्त हाथी छोड़ दिया गया। भीड़ काँप गई। कबीर निर्द्वन्द्व खड़ा रहा।

हाथी चिंघाड़ कर बढ़ने लगा।

कमाल आगे बढ़ा। उसी समय सिकंदर लोदी थर्रा उठा और सिंहासन पर लड़खड़ा कर बैठ गया। भीड़ विक्षुब्ध हो उठी थी। लोई झपटी और हाथी ने सूण्ड में लपेट कर फेंक दिया। वह कबीर के चरणों पर अचेत सी गिर गई। भीड़ नहीं रुकी। सैनिकों से युद्ध होने लगा। उस भीड़ में गरीब थे, वे हिंदू भी थे, मसलमान भी, जुगी भी, जुलाहे भी।

काज़ी ने कहा : हुजूर मुसलमान मसलमान से लड़ रहा है।

पर भीड़ बढ़ती ही गई। सुल्तान और सेना पीछे रह गये। कबीर और कबीर के चरणों पर लोई को गरीबों की सौ सौ गज मोटी दीवारों ने अभेद्य कवच की भांति घेर लिया।

सिकन्दर क्रुद्ध सा लौट गया। आज वह हार गया था। बगावत को कुचलने के लिये मुंह खोलने के पहले उसे खेमे में खबर मिली कि चंदवार ठाकुरों ने भयानक हमला किया है, और किसी भी क्षण लोदी नेस्तनाबूद हो सकते हैं। उसने उसी वक्त फौजों को लौटने का हुक्म दे दिया।

भीड़ खड़ी थी। मैं कमाल कह रहा हूँ। सुनते हो !! मैं कमाल पुकार २ कर कह रहा हूँ। लोग कहते हैं कबीर को चमत्कारों ने बचा लिया। पर सचाई नहीं कहते कि उसे काशी की जनता ने जान हथेली पर रखकर बचा लिया।

मैंने व्याकुल स्वर से पुकारा : माँ ! अम्माँ ! तू चली गई !

पर दादा शांत थे। उनके मुख पर दिव्याभा थी। उस असंख्य भीड़ में वे सहसा गा उठे—

पतिबरता पति को भजै
और न आन सुहाय

सिंह बचा* जो लँघना
तौ भी घास न खाय।
सती बिचारी सत किया
कांटों सेज बिछाय
लै सूती पिय आपना
चहुँ दिसि अग्नि लगाय।
चढ़ी अखाड़े सुंदरी
माँड़ा पिउ सों खेल
दीपक जोया ज्ञान का
काम जरै ज्यों तेल।

भीड़ रोने लगी। मैं तो आँखें ढंक कर बैठ गया। तब पिता ने विभोर कण्ठ से गाया जैसे वे अपने आपको भूल गये थे—

हूँ बारी मुख फेरि पियारे
करवट दे मोहें काहे को मारे
करवत भला न करबट तेरी
लाग गरे सुन बिनती मेरी
हम तुम बीच भया नहिं कोई
तुमहिं सो कँत नारि हम सोई
कहत कबीर सुनो नर लोई
अब तुम्हरी परतीत × न होई।

भीड़ का विह्वल हाहाकार, और फिर विक्षोभ का फूटता हुआ ज्वार, सब कभी जयजयकार बन जाते, कभी धुंआधार कोलाहल।

मैंने देखा। उस क्षण वह ज्ञानी कबीर, सुल्तान को चुनौती देने वाला कबीर, अत्यन्त तन्मय दिखाई दे रहा था।

मैंने कहा दादा: अम्माँ चली गई।

---

*बच्चा।

× विश्वास।

'नहीं बेटा ! वह तो कबीर बन गई। अब कबीर चला गया।' पिता ने कहा।

लोग उसे उठाने आये। वे जुलूस निकालना चाहते थे। पर पिता ने कहा : नहीं। लोई को मैं लाया था, मैं ही ले जाऊँगा क्योंकि वह आज मेरे भीतर समा गई है—

सूरा के तो सिर नहीं
दाता के धन नाहिं
पतिवरता के तन नहीं
सुरति बसै पिउ माँहिं····

और पिता ने लोई को हाथों पर उठा लिया। वे आगे बढ़े और पुकार उठे—गाओ ! आज लोई के लिये गाओगे नहीं ?

और हजारों की भीड़ श्मशान की ओर गाती हुई बढ़ चली—

ऐरी घूँघट के पट खोल
तोहे पिया मिलैंगें····

उस समय मुझे लगा था कि कबीर जैसा मनुष्य तब तक इस देश में हुआ ही नहीं था, वह कैसा नया मनुष्य था, अपराजित, अनिंद्य, महान निष्कलंक········

और भीड़ गाती जा रही थी। गाती जा रही थी····

———